मलफ़ूज़ात

मौलाना मुहम्मद इलयास (रह०)

मौलाना मुहम्मद मंज़ूर नोमानी (रह०)

मलफ़ूज़ात

मौलाना मुहम्मद इलयास (रह०)
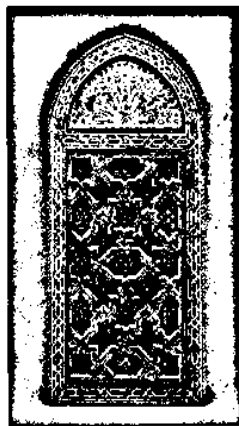
मौलाना मुहम्मद मंज़ूर नोमानी (रह0)

www.idaraimpex.com

मलफ़ूज़ात मौलाना मुहम्मद इलयास (रह0)

मौलाना मुहम्मद मंज़ूर नोमानी (रह0)

Malfoozat Maulana Muhammed Ilyas (Rah)

प्रकाशन : 2015

ISBN 81-7101-175-6

TP-365-15

Published by Mohammad Yunus for

IDARA IMPEX

D-80, Abul Fazal Enclave-I, Jamia Nagar
New Delhi-110 025 (India)
Tel.: +91-11-2695 6832 & 085888 33786
Fax: +91-11-6617 3545 Email: **info@idara.in**
Online Store: **www.idarastore.com**

Retail Shop: **IDARA IMPEX**
Shop 6, Nizamia Complex, Gali Gadrian, Near Karim's Hotel
Hazrat Nizamuddin, New Delhi-110013 (India) Tel.: 085888 44786

विषय सूचि

मलफ़ूज़ात का मुरत्तिब साहिबे मलफ़ूज़ात की ख़िदमत में

`मौलाना मुहम्मद इलयास रहमतुल्लाह अलैह का नाम तो शायद अपनी अपनी पढाई के ज़माने ही से सुना था लेकिन आँखों से देखने का इत्तिफ़ाक़, जहाँ तक याद पडता है, पहली दफ़ा शायद रमज़ान सन् 1453 हिजरी में हुआ, उसके बाद चार–पांच साल तक बग़ैर इरादा व तलब के महज़ इत्तिफ़ाक़ी तौर पर ग़ालिबन कई दफ़ा ज़ियारत व मुलाक़ात की नौबत आई, लेकिन उन सरसरी और इत्तिफ़ाक़ी मुलाक़ातों में मैं इससे ज़्यादा कुछ नहीं समझ सका कि मौलाना एक मुख़लिस आलिमे दीन हैं, पुराने तर्ज़ के सीधे और नेक बुज़ुर्गों का नमूना और ज़मानें क़े तकाज़े और अहम वक़्ती दीनी ज़रूरतों से वाक़िफ़ न होने के बावजूद मुसलमानों की दीनी इसलाह सुधार का सच्चा जज़बा और सच्ची तड़प अपने अन्दर रखते हैं।

बहर हाल उन मुलाक़ातों में न मै मौलाना की शख़्सियत से प्रभावित हुआ और न मैनें उनकी दीनी दावत व तहरीक की कोंई ख़ास अहमियत समझी, यहाँ तक कि ग़ालिबन सन् 1358 हिजरी में ख़ास वक़्ती तक़ाज़ों को खूब समझने वाले एक बड़े रौशन दिमाग और साहिबे क़लम आलिमे दीन ने खुद मौलाना से मुलाक़ात करके और उनकी दावत व तहरीक के ख़ास इलाके मेवात जाकर तहरीक के काम के तरीक़े और

उसके असरात व नतीजे को खुद देखकर अपनी राय और अपने ख्यालात एक मज़मून में लिखें। जहाँ तक याद पड़ता है कम से कम मेरी नज़र में तो इस तहरीक की अहमियत सब से पहले इसी मज़मून में पैदा हुई।

उसके कुछ दिनों बाद ज़ीकादा सन् 1358 हि॰ में मौलाना की ज़ियारत और उनकी तबलीगी कोशिशों से सीधी और तफ़सीली वाक़फ़ियत हासिल करने ही की नियत से देहली का एक सफ़र रफ़ीके मोहतरम मौलाना सय्यद अबुल हसन अली नदवी और एक दूसरे दीनी दोस्त मौलवी अब्दुल वाहिद साहब एम॰ ए॰ के साथ किया। लेकिन इत्तिफ़ाक़ की बात कि देहली पहुंचते ही मेरे मकान से फ़ौरन वापस आने का तार मिला और मैं उन दोनों साथियों को छोड़कर मौलाना से मिले बग़ैर ही वापस हो गया, मेरे दोनों साथियों ने उसी सफ़र में मौलाना से पहली और तफ़सीली मुलाक़ात भी की और मेवात जाकर उनके तबलीगी काम के ढंग और उसके असर व नतीजे को भी देखा।

मौलाना सय्यद अबुल हसन अली मियाँ अपनी फ़ितरी सआदत और दीनी शख़सियतों से ख़ास कुदरत तअल्लुक की वजह से उस पहली ही मुलाक़ात की शख़सियत और उनके तबलीगी काम से बहुत ज़्यादा मुतअस्सिर हो कर वापस हुए और अपने ख़तों के ज़रिये मुझे भी मुतअस्सिर और मौलाना की तरफ़ मुतवज्जेह करने की उन्होंने कोशिश की, लेकिन चूंकि मैं मौलाना को कई बार देख चुका था और कई मुलाक़ातों में उनकी बातें भी सुन चुका था और अपनी कम निगाही की वजह से उनसे कुछ ज़्यादा मुतअस्सिर न हो सका था इस लिये

मौलाना अली मियां के उन ख़तों का भी मुझ पर कोई ख़ास असर नहीं पड़ सका, हाँ इतना ज़रूर हुआ कि मौलाना की दीनी दावत से तफ़सीली वाक़फ़ियत हासिल करने की जो ख़्वाहिश और जो शौक़ पहले ही पैदा हो चुका था मौलाना अली मियां के उन ख़तों से उसमें कुछ इज़ाफ़ा होगया।

कुछ दिनों बाद मेवात के इलाक़े में एक बहुत बड़े तबलीग़ी इजतिमा की राय हुई, मुझे भी बुलाया गया, और मैं अपने निजी शौक़ से शरीक हुआ, मैं मानता हूं कि उस सफ़र की अलग–अलग बैठकों में मौलाना की बातें सुनने, और मेवाती क़ौम में ऊँचे पैमाने पर बहुत ज़्यादा दीनी तबदीली के असरात अपनी आंखों से देखने की वजह से मौलाना की शख़सियत और उनकी तबलीग़ी तहरीक को मैं पहले से ज़्यादा बाइज़्ज़त समझने लगा, लेकिन फिर भी मैं इतना मुतअस्सिर नहीं हुआ कि अपने को इस काम में लगा लेने का फैसला कर लेता।

आगे की बात सुनाने से पहले अपना एक ख़ास हाल सुना देना यहाँ ज़रूरी है, वाक़ेआ यह है कि हज़रत मुजद्दिद अल्फ़े सानी रहमतुल्लाह अलैह, हज़रत शाह वलीयुल्लाह रह०, हज़रत सय्यद अहमद शहीद रह०, हज़रत शाह इसमाईल शहीद रह०, हज़रत मौलाना रशीद अहमद गंगोही रह० जैसे बुज़ुर्गों से अगर्चे मुझे बड़ी गहरी अक़ीदत थी और इस्लामी हिन्द की यह चन्द शख़सियतें मेरे दिल व दिमाग़ पर छाई हुई थीं लेकिन तसव्वुफ़ के बारे में मुझे इतमिनान न था, बल्कि तबीयत को उससे एक दर्जे का डर था और ज़ेहन में उस पर कुछ इल्मी इशकालात भी थे। सन् 1361 हिजरी के आख़िर या सन् 1362 हिजरी के शुरू में तक़दीरे इलाही के एक फ़ैसले ने मेरे लिये एक

ऐसी सूरत पैदा कर दी कि एक साहिबे इरशाद बुजुर्ग (जिनको मैं खुदा के खास और अहले यक़ीन व इख़लास में से समझता हूं) की ख़िदमत में क़रीबन एक हफ़्ता मुझे ठहरना पड़ा—मौक़े को ग़नीमत जान के एक दिन मैंने तसव्वुफ़ और उसके ख़ास आमाल व काम के बारे में अपने ख़्यालात बताए, अपनी तसल्ली या सुकून के लिये नहीं बल्कि खुद अपने ख़्याल में गोया उन बुज़ुर्ग के हाल और ख़्याल की इस्लाह के लिये। लेकिन अल्लाह के उस बन्दे ने अजीब इलाज का तरीक़ा इख़्तियार किया, तफ़सील तो बहुत लम्बी है और उसके ज़िक्र का यह मौक़ा भी नहीं, बस थोड़ा सा सिर्फ़ नतीजा सुन लीजिये कि दो तीन दिन में वह सब मुश्किलात ख़त्म हो गई और मालूम हुआ कि यह सारे बुरे ख़यालात और एतेराज़ात खुद अपनी ही ग़लत फ़हमियों का नतीजा थे।

यह चन्द रोज़ जो इन बुज़ुर्ग की ख़िदमत में गुज़रे मेरी ज़िन्दगी में एक मोड़ की हैसियत रखते हैं। फिर जब मैं उन बुज़ुर्ग से रूख़सत होने लगा तो उन्होंने बड़ी शफ़क़त और मोहब्बत के साथ मुझे ताकीद फ़रमाई कि "हज़रत देहलवी" के यहां तुम ज़्यादा जाया करो और उनसे मिलते रहा करो—यह बुज़ुर्ग हज़रत मौलाना मोहम्मद इलयास रह॰ को "हज़रत देहलवी" ही के नाम से याद करते हैं – मैंने अर्ज किया कि मैं उनकी ख़िदमत में कई बार हाज़िर हुआ हूं और मेरे दिल में उनकी पूरी इज़्ज़त है लेकिन मैं उनसे ज़्यादा मुतअस्सिर नहीं हो सका हूं। मेरी ज़बान से यह सुनकर उन बुज़ुर्ग ने हज़रत मौलाना के मुतआल्लिक़ बहुत ही बुलन्द कलिमात फ़रमायें जिनका हासिल शायद यह था कि अल्लाह का ख़ास

तअल्लुक़ एक ही वक़्त में बहुत से बन्दों से होता है लेकिन ख़ासुलख़ास तअल्लुक़ बस किसी–किसी के साथ ही होता है और मेरे ख़याल में इस वक़्त हज़रत देहलवी के साथ अल्लाह का तआल्लुक़ बिल्कुल ही ख़ास क़िस्म का है।

मैं चूँकि उन बुज़ुर्ग से बहुत कुछ मुतअस्सिर हो चुका था इसलिये हज़रत मौलाना मोहम्मद इलयास रह. के मुतअल्लिक़ उनकी ज़बान से यह बातें सुनकर मैंने इरादा कर लिया कि यहाँ से अब इनशाअल्लाह देहली होके और मौलाना की ज़ियारत करके ही घर वापस जाऊँगा, इसलिये मैं वहाँ से सीधा देहली गया, हज़रत मौलाना उन दिनों सख़्त बीमार थे, कई दिनों से गिज़ा भी नहीं हुई थी कमज़ोरी का यह आलम था कि ज़रा खड़े होते तो टाँगे कांपने लगतीं, मैं जब ख़िदमत में हाज़िर हुआ और सलाम के बाद मुसाफ़े के लिये हाथ बढ़ाया तो बजाय मुसाफ़ा करने के बिस्तर से उठ कर मेरे दोनों हाथ पकड़ के हज़रत खड़े हो गये, मैंने ज़िद करके अर्ज़ किया कि आप आराम फरमायें, आपकी तबिअत टीक नहीं है :–फ़रमाया

"कुछ नहीं है, बस तुम ही लोगो का बीमार डाला हुआ हूं, तुम्हारा ही सताया हुआ हूं, तुम आजाओ दीन का काम करने लगो, इनशा–अल्लाह अच्छा हो जाऊँगा।"

क़िस्सा मुख़तसर, मौलाना ने मेरे हाथ उस वक़्त छोड़े जब मैंने वादा कर लिया कि इनशाअल्लाह आऊँगा और वक़्त दूँगा।"

जहाँ तक याद है उस दफ़ा मैं ग़ालिबन एक रात व दिन मौलाना की ख़िदमत में रहा, ऐसी सख़्त बीमारी और इस दर्जा

की कमजोरी में मौलाना पर दीन की फ़िक्र का मैंने जैसा ग़ल्बा देखा और दीन के साथ उनके जिस तअल्लुक़ का अन्दाज़ा हुआ उसने मुझे बहुत मुतअस्सिर किया, और मैं यह तय करके वापस आया कि मौलाना को अल्लाह तआला इस बीमारी से अच्छा कर दे तो मैं उनके काम में शरीक होकर कुछ वक़्त उनकी ख़िदमत में गुज़ारूँगा।

उस बीमारी से ठीक होने के बाद जमादुल उख़रा सन् 1362 हिजरी में मेवात में एक तबलीग़ी इजतिमा तय हुआ, इत्तिला मिलने पर मैं भी देहली पहुंच गया, रफ़ीक़े मुहतरम मौलाना अली मियां भी आ गये।

अल्लाह तआला मौलाना इहतिशामुल हसन साहब को जज़ाये ख़ैर दे ग़ालिबन उन्होंने ही यह तजवीज़ किया कि हम दोनों मौलाना के साथ एक कार में जायें, मौलाना के निहायत मुख़लिस और महबूब मो. शफ़ी साहब क़ुरैशी रह. की यह कार थी और बहुत छोटी क़िस्म की थी, इसमें हज़रत मौलाना और हम दोनों के सिवा सिर्फ़ एक क़ुरैशी साहब ही और थे और वही कार चलाने वाले थे।

कार निज़ामुद्दीन से रवाना हुई और हज़रत मौलाना के इरशादात व इफ़ादात का सिलसिला शुरु हुआ, थोड़ी ही देर के बाद मुझे ख़्याल हुआ कि मौलाना की यह बातें खुद याद रखने और दूसरों तक पहुंचाने के लायक़ हैं, लिहाज़ा इन्हें लिख लेना चाहिये, अतः कार ही में जेब से पेन्सिल काग़ज़ निकाला और ख़ास–ख़ास बातों को नोट करना शुरू कर दिया मंज़िले मक़सूद पर पहुंचने तक यह सिलसिला बराबर जारी रहा।

मौलाना के मलफूज़ात की यह पहली किस्त थी जो मैंने उस सफर में लिखी, इसका एक हिस्सा रजब सन् 1362 हिजरी के "अलफुरकान" में मौलाना की ज़िन्दगी बल्कि तनदुरुस्ती ही में उनकी इजाज़त से शाये हुआ, और दूसरा हिस्सा कई महीने के वक़्फ़े से रबीऐन सन् 1365 हिजरी के अलफुरकान में शाये हुआ इस मज़मून की पहली और दूसरी किस्त इन ही मलफूज़ात पर मुशतमिल है।

मेवात के उस सफ़र से करीबन एक माह बाद लखनऊ और कानपुर के तबलीगी दौरे में भी एक हफ़्ता हज़रत मौलाना का साथ मिला, उस सफ़र में भी कुछ इरशादात नोट किये और इस मज़मून की तीसरी किस्त इनही मलफूज़ात पर मुशतमिल है।

उसके कुछ अर्से बाद मौलाना बीमार होकर बिस्तर पर लेट गये, और रजब सन 1363 हिजरी में वफ़ात पर वह बीमारी खत्म हुई। رحمه الله تعالے رحمة الابرار الصالحين.

इन्तिकाल से करीबन 4 माह पहले रबीउल अव्वल या रबीउस्सानी में मर्ज़ की तेज़ी और नज़ाकत की इत्तिला पाकर मै हाज़िरे खिदमत हुआ, हुस्ने इत्तिफ़ाक़ से उन दिनों मेरे वह मखदूम और मोहसिन बुज़ुर्ग भी मौलाना की अयादत के लिये तशरीफ लाये हुये थे जिन्होंने मुझे मौलाना की ख़िदमत में हाज़िरी की ताकीद फ़रमाई थी, जब वह तशरीफ़ ले जाने लगे तो मुझे अलग बुलाकर फ़रमाया।

"मोलवी साहब! और काम तो उम्र भर करोगे, इस वक्त जितना हो सके उनके पास पड़े रहो, आज यह बड़े मियां हज़ारों मील रोज़ की रफ़्तार से जा रहे हैं।"

उनके इस इरशाद पर मैंने यह तय कर लिया कि अब मौलाना की बीमारी में इनशाअल्लाह यहीं रहूंगा और हफ़्ता दस दिन के बाद रिसाला और दफ़्तर की ज़रुरियात की देख-भाल के लिये दो चार दिन के वास्ते बरेली[1] चला जाया करुँगा। चुनान्चे यही मामूल रहा। और कुल मिलाकर ग़ालिबन दो माह से कुछ ज़्यादा मौलाना के मरज़े वफ़ात में मेरा क़याम रहा। जमादुल उख़रा सन् 1362 हिजरी के मेवात के सफ़र और रजब सन् 1362 हिजरी के लखनऊ व कानपुर के सफ़र के मलफ़ूज़ात के सिवा इस मज़मूए के तमाम मलफ़ूज़ात हज़रत रह. के मरज़े वफ़ात ही के हैं। अल्बत्ता चौथी क़िस्त के तमाम मलफ़ूज़ात मौलाना ज़फ़र अहमद साहब थानवी के मुरत्तब किये हुये हैं, मौलाना मोसूफ़ हज़रत मौलाना के आख़िरी मर्ज़ में पूरा एक महीना निज़ामुद्दीन में मौलाना के पास ठहरे रहे थे और पाबन्दी से हज़रत के मलफ़ूज़ात लिखते थे।

मौलाना की इस बीमारी में उनके जिन हालात व बातों का तजुर्बा हुआ, यह वाक़ेआ है कि उनसे बुज़ुर्गों के उन बहुत से वाक़ेआत का यक़ीन हो गया जिनको तज़केरों की किताबों में पढ़ा था, लेकिन उनके सही होने पर इत्मिनान न होता।

बहुत सी बातें जिनका मुझ जैसा ज़ेहनी बाग़ी क़ायल न

---

1 उस ज़माने मे मेरा क़याम बरेली मे रहता था और रिसाला अलफ़ुरक़ान वहीं से निकलता था।

हो सकता था। मौलाना में उन बातों को अपनी आंखों से देख के कायल हो जाना पड़ा। उस वक्त के अपने तअस्सुरात का हासिल अपने मकाले (लेख) "मेरी ज़िन्दगी के तजुर्बे" में लिख चुका हूँ, अगर्चे शखसियत और खास तौर से ऐसी शखसियत के कायम मुकाम कोई चीज़ भी नहीं हो सकती, लेकिन उम्मीद है कि रफीके मोहतरम मौलाना सय्यद अबुल हसन अली की मुरत्तब की हुई हज़रत की सवानेह और मलफ़ूज़ात के इस छोटे से मजमूए के पढ़ने वालों को मौलाना मरहूम की पहचान किसी दर्जा में इनशाअल्लाह हासिल हो सकेगी।

ख़्याल रखने के काबिल कुछ बातें :

(1) मौलाना जब गुफ़्तुगू फ़रमाते थे तो मैं उस वक्त सिर्फ़ थोड़े इशारात में नोट कर लिया करता था, बाद में किसी फ़ुरसत के वक्त अलफ़ाज़ व इबारात अपनी याददाश्त से लिखता था। इस लिये लफ़्ज़ों में बहुत कुछ फ़र्क़ का इमकान है, बल्कि बहुत से मकामात पर तो पढ़ने वालों को समझाने के ख़्याल से जानबूझ कर भी अलफ़ाज़ में कुछ तबदीली की गई है, क्योंकि मौलाना मरहूम की इल्मी ज़बान और मख़सूस तर्जे अदा को बसा अवकात करीब रहने वाले ख़ास लोग ही समझ सकते थे।

(2) अकसर ऐसा होता था कि मौलाना बात करते रहते थे लेकिन मैं उस वक्त लिखने की तरफ़ तवज्जोह करना मुनासिब नहीं समझता था और यह ख़्याल कर लेता था कि इनशाअल्लाह बाद में याद से लिख लूँगा, लेकिन याद नहीं आता कि फिर कभी इसकी नौबत आई हो, इस लिये यह

वाक़िआ है कि मैंने याद रखने और लिखने के क़ाबिल हज़रत के जो इरशादात सुने यह मलफूज़ात जो इस छोटी सी किताब में मुरत्तब करके पेश किये जा रहे हैं यह शायद उनका दसवां हिस्सा भी नहीं हैं।

(3) हज़रत मौलाना रह. ने मुसलमानों में दीनी ज़िन्दगी और ईमानी रुह पैदा करने की जो कोशिश एक ख़ास तर्ज़ पर शुरु की थी ओर जिसमें आपने आख़िरकार अपनी जान खपा दी, मौलाना का असली कारनामा वही दीनी दावत है, और अल–हम्दु लिल्लाह कि मौलाना मरहूम के बाद भी वह सिलसिला कम से कम मिक़दार और कम्मियत में तो दसों गुने इज़ाफ़े और तरक़्क़ी के साथ जारी है, अलबत्ता दावत के उसूल और उसकी रूह (ईमान व एहतिसाब) की हिफ़ाज़त की तरफ़ इस तहरीक से ख़ास तअल्लुक़ रखने वालों को ज़्यादा से ज़्यादा तवज्जोह (ध्यान) करने की ज़रूरत है और इस सिलसिले में बहुत कुछ रहनुमई और निशानदिही इस मल्फूज़ात के मजमूए से भी हम हासिल कर सकते हैं और दरअस्ल यही इसकी इशाअत का ख़ास मक़सद है।

وَاللّٰهُ يَقُوْلُ الْحَقَّ وَهُوَ يَهْدِى السَّبِيْلَ
وَالْحَمْدُ لِلّٰهِ اَوَّلًا وَّاٰخِرًا

वल्लाहु यक़ूलूल–लुहक़्क़ व–हु–व यहदिस्सबील
वल–हम्दु लिल्लाहि। अव्व–लौ–व आख़िरन.

मो. मन्ज़ूर नोमानी
अफ़ल्लाहु अन्हु

हज़रत मौलाना मोहम्मद इल्यास रह. के इरशादात

क़िस्त नम्बर-1

यह क़िस्त हज़रत रह. की ज़िन्दगी में शाये हो चुकी है।

[1]

फ़रमाया- अम्बिया अलैहिमुस्सलाम की उम्मतों की आम हालत यह रही है कि जूँ-जूँ नबूवत के ज़माने से उनको दूरी होती जाती थी, दीनी काम (इबादत वग़ैरह) अपनी रूह और हकीक़त से ख़ाली होकर उनके यहाँ सिर्फ़ "रस्म व रिवाज" की हैसियत इख़्तियार करलेते थे और उनकी अदायगी बस एक पड़ी हुई रस्म के तौर पर होती थी। इस गुमराही और बेराह रवी की इस्लाह के लिये फिर दूसरे पैग़म्बर भेजे जाते थे जो इस रस्मी हैसियत को मिटा कर उम्मतों को "दीनी काम" की असल हकीक़तों और शरीअत की हकीकी रूह से वाकिफ़ कराते थे। सब से आखिर में जब रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम भेजे गये तो उस वक़्त की जिन कौमों का तअल्लुक किसी आसमानी दीन (धर्म) से था उनकी हालत भी यही थी कि उनके पैगम्बरों

की लाई हुई शरीअत का जो हिस्सा उनके पास बाक़ी भी था तो उसकी हैसियत भी बस कुछ बेरूह रस्म व रिवाज के मजमूए की थी। इन्ही रस्मों को वह असिल दीन व शरीअत समझते थे। रसूलल्लाह स० ने इन "रसूमों" को मिटाया और असिल दीनी हक़ीक़तों और हुकमों की तामील दी।

उम्मते मोहम्मदी भी अब इस बीमारी में घिर चुकी है, उसकी इबादतों तक में यंह रस्मियत आ चुकी है. यहां तक कि दीन की तालीम भी जो इस क़िस्म की सारी ख़राबियों की इस्लाह का ज़रीआ होनी चाहिये थी वह भी बहुत सी जगह एक "रस्म" सी ही बन गई है। लेकिन चूंकि नबूवत का सिलसिला अब खत्म किया जा चुका है और इस क़िस्म के कामों की ज़िम्मेदारी उम्मत के "उलमा"[1] पर रख दी गई है जो नबियों के नायब और जानशीन हैं. उनही का यह फ़र्ज़ है कि वह इस गुमराही और ख़राबी को ठीक करने की तरफ़ ख़ास तौर से ध्यान दें और उसका ज़रीआ है नियत का सही होना, क्योंकि आमाल[2] में "रस्मियत" जब ही आती है जबकि उनमें लिल्लाहियत[3] और बन्दगी की शान नहीं रहती और नियत के सही होने से आमाल का रुख़ सही होकर अल्लाह ही की तरफ़ मुड़ जाता है, और रस्मियत के बजाय उनमें "हकीक़त" पैदा हो जाती है और हर काम बन्दगी और ख़ुदा परस्ती के जज़्बे से होता है। ग़र्ज़कि लोगों को नियत के सही होने की तरफ़ मुतवज्जेह[4] करके उनके आमाल में

1. विद्वानो 2. दीनी काम 3. अल्लाह के लिये होना
4. आकर्षित

लिल्लाहियत और हक़ीक़त पैदा करने की कोशिश करना उम्मत के उलमा और दीन को चलाने और फैलाने वालों का इस वक़्त एक ख़ास फ़रीज़ा[1] है।

[2]

फ़रमाया-कुरआन व हदीस में बड़ी अहमियत के साथ इस हक़ीक़त का एलान किया गया है कि दीन "आसान" है यानी वह सरासर सहूलत और आसानी है। इसलिये जो चीज़ दीन में जिस दर्जा ज़रूरी होगी वह उसी दर्जे में सहल और आसान होनी चाहिये, तो नियत का सही होना और ख़ालिस अल्लाह के लिये होना चूंकि दीन में निहायत ज़रूरी है बल्कि वही सारे दीन के कामों की रूह है इसलिये वह बेहद सहल है, और यही "इख़्लास लिल्लाह" चूंकि सारे "सुलूक" और "तरीक़"[2] का हासिल है, इसलिये मालूम हुआ कि सुलूक भी बहुत आसान चीज़ है, मगर याद रहना चाहिये कि हर चीज़ अपने उसूल और अपने तरीक़े से आसान होती है। गलत तरीक़े से तो आसान से आसान काम भी कठिन हो जाता है। अब लोगों की ग़लती यह है कि वह उसूल की पाबन्दी ही को मुश्किल समझते हैं और उससे बचते हैं, हालांकि दुनिया में कोई मामूली से मामूली काम भी उसूल की पाबन्दी और काम का सही ढंग इख़्तियार किये बिना पूरा नहीं हो पाता। जहाज़, कश्ती, रेल, मोटर सब उसूल ही से

---

1. कर्तव्य 2. सूफ़ियों के तरीक़े

चलते हैं, यहाँ तक कि हांडिया, रोटी तक भी उसूल ही से पकती है।

[3]

फ़रमाया – तरीक़त[1] की ख़ास ग़रज़ और उद्देश्य है अल्लाह तआला के हुकमों का दिल को अच्छा लगना और जिन चीज़ों से मना किया गया है उन बातों का दिल को अच्छा न लगना (यानी ऐसी हालत पैदा हो जाना कि ख़ुदा के अहकाम को करने में लज़्ज़त[2] व फ़रहत[3] हासिल हो और नवाही यानी जिन चीज़ों से मना किया गया है उनके पास जाने से तकलीफ़ हो और बुरा लगने लगे। यह तो है तरीक़त की ग़रज़, बाक़ी जो कुछ है (यानी ख़ास क़िस्म के ज़िक्र व अशग़ाल[4] और मख़सूस क़िस्म की मशक़ें आदि) वह उसको हासिल करने के तरीक़े और साधन हैं लेकिन अब बहुत से लोग इन साधनों ही को असिल तरीक़ समझने लगे हालांकि कुछ तो उन में से बिदअत हैं। बहरहाल चूंकि उन चीज़ो की हैसियत सिर्फ़ ज़रीये (साधनों) की है और यह ख़ुद मक़सूद नहीं हैं, इसलिये हालात व तक़ाज़ों के बदलने के साथ इन पर नज़रे सानी और मस्लिहत के मुताबिक़ तबदीली ज़रूरी हैं। लेकिन जो चीज़े शरीअत में मन्सूस हैं[5] वह हर ज़माने में यकसां तौर पर वाजिबुल अमल

---

1. सूफ़ियों का तरीक़ा जिस से रूहानी कमाल हासिल होता है।
2. आनन्द 3. ख़ुशी 4. काम 5. यानी जो चीज़ें क़ुरआन और हदीस से साबित हैं।

रहेंगी। यानी उनको उसी तरह अदा करना हमेशा ज़रूरी रहेगा।

[4]

फ़रमाया — फ़रायज़ का दर्जा नवाफ़िल से बहुत ऊँचा है बल्कि समझना चाहिये कि नवाफ़िल से मक़सूद ही फ़रयाज़ की तकमील[1] या उनकी कमियों की तलाफ़ी होती है, अतः फ़रायज़ असिल हैं और नवाफ़िल उनके तवाबे[2] और फ़ुरु[3]। मगर कुछ लोगों का हाल यह है कि वह फ़रायज़ से तो लापरवाही बरत्ते हैं और नवाफ़िल में मशग़ूल रहने का इससे बहुत ज़्यादा इहतिमाम करते हैं, जैसे आप सब हज़रात जानते हैं कि "दावत इलल ख़ैर"[4] "अम्र बिलमारुफ़"[5] और "नही अनिलमुनकर"[6] दीन की तबलीग़ के यह सब शोब[7] अहम फ़रायज़ में से हैं, मगर कितने लोग हैं जो इन फ़रायज़ को अदा करते हैं, लेकिन नफ़ली ज़िक्रों में मशग़ूल रहने वालों की इतनी कमी नहीं।

[5]

फ़रमाया – कुछ दीनदार लोगों और इल्म रखने वालों को "इस्तिग़ना"[8] के बारे में बड़ी सख़्त ग़लत–फ़हमी है, वह समझते हैं कि इस्तिग़ना का तक़ाज़ा यह है कि अमीरों और

---

1. पूरा करना 2. बाद में आने वाले 3. शाखाऐं
4. अच्छाई की तरफ़ बुलाना 5. भलाई का हुक्म देना
6. बुराई से रोकना 7. विभाग 8. बेनियाज़ी

मालदारों से बिलकुल मिला ही न जाय और उनमें घुलने मिलने से परहेज़ किया जाय। हालांकि इस्तिग़ना का मनशा[1] सिर्फ़ यह है कि हम उनकी दौलत के ज़रूरत मंद बनकर उनके पास न जायें और माल व इज़्ज़त ओर मरतबे की चाह में उनसे न मिलें, लेकिन उनकी इसलाह[2] के लिये और दीनी मक़ासिद के लिये उनसे मिलना और सम्बन्ध रखना हरगिज़ इस्तिग़ना के ख़िलाफ़ नहीं, बल्कि यह तो एक दर्जे में ज़रूरी है। हाँ इस चीज़ से बहुत होशियार रहना चाहिये कि उनसे घुलने–मिलने से हमारे अन्दर माल व मरतबे की मुहब्बत और दौलत की लालच पैदा न हो जाय।

[6]

फ़रमाया-जब कोई अल्लाह का बन्दा किसी भलाई के काम की तरफ़ क़दम बढ़ाना चाहता है तो शैतान तरह–तरह से उसे रोकने की कोशिश करता है और उसकी राह में मुश्किलात और रुकावटें डालता है– लेकिन अगर उसकी यह रुकावटें नाकाम रहतीं हैं और ख़ुदा का वह बन्दा उन सब को पार करके उस भलाई के काम को शुरू कर ही देता है तो फिर शैतान की दूसरी कोशिश यह होती है कि वह उसके इख़लास और उसकी नियत में ख़राबी डाल के या दूसरे तरीक़ों से उस भलाई के काम में ख़ुद हिस्सेदार बनना चाहता है, यानी कभी उसमें "रिया" व "सुमआ" (दिखावे और शोहरत की ख़्वाहिश) को शामिल करने की कोशिश करता

1. उद्देश्य
2. सुधार

है ओर कभी किसी दूसरी ग़रज़[1] की मिलावट से उसकी लिल्लाहियत को बरबाद करना चाहता है और उसमें वह ज़्यादातर कामयाब हो जाता है, इस लिए दीनी काम करने वालों को चाहिये कि वह इस ख़तरे से हर वक़्त चौकन्ने रहें और इस क़िस्म के शैतानी भुलावे व बहकावे से अपने दिल की हिफ़ाज़त करते रहें और अपनी नियतों का बराबर जायज़ा लेते रहें, क्योंकि जिस काम में अल्लाह की रज़ा व ख़ुशी के अलावा कोई दूसरी ग़रज़ किसी वक़्त भी शामिल हो जायगी फिर वह अल्लाह के यहाँ क़ुबुल नहीं।

[7]

फ़रमाया-अक्सर दीनी मदरसों में यह एक बड़ी ग़फ़लत और कोताही होती है कि तलबा[2] को पढ़ा तो दिया जाता है लेकिन इसी कोई ख़ास कोशिश नहीं की जाती कि इस पढ़ने–पढ़ाने का जो असिल मक़सद है (यानी दीन की ख़िदमत और अल्लाह की तरफ़ बुलाना) वह पढ़ने के बाद उसी में लगें, इस ग़फ़लत का नतीजा यह होता है उिन मदरसों के बहुत से होनहार फ़ाज़िल अपनी पढ़ाई पूरी करने के बाद सिर्फ़ रोज़ी–रोटी हासिल करने को अपना असली मक़सद बनाकर या तो तिब (हिकमत) पढ़ने में लग जाते हैं और या सरकारी यूनिवर्सिटियों के इम्तिहान देकर अंग्रेज़ी स्कूलों में टीचरी का पेशा इख़्तियार कर लेते हैं और उनकी दीनी तालीम पर जो वक़्त और रुपया ख़र्च हुआ था और जो मेहनत की गई थी वह नतीजे के लिहाज़ से इस तरह

1. उद्देश्य 2. छात्रों

सब बेकार हो जाती है बल्कि अक्सर तो वह दीन के दुश्मनों के काम आती है, इस लिये पढ़ाने से ज़्यादा हमको इसकी फ़िक्र और कोशिश करनी चाहिये कि जो तलबा पढ़ कर फ़ारिग़ हों वह दीन की ख़िदमत ही में लगें और दीन के इल्म का हक़ अदा करें, अपनी खेती में कुछ पैदा न हो तो यह भी घाटाहै लेकिन अगर पैदा होकर हमारे दुश्मनों के काम आये तो और ज़्यादा घाटे की बात है।

[8]

फ़रमाया-सरकारी यूनिवर्सिटियों के जो इम्तिहानात "मोलवी फ़ाज़िल" वग़ैरह दिये जाते हैं हम लोगों को उनकी बुराई और उनके दीनी नुक़सान का पूरा अन्दाज़ा और एहसास नहीं। यह इम्तिहानात आम तौर से इसी लिये तो दिये जाते हैं कि अंग्रेज़ी स्कूलों में नौकरी मिल सके, गोया काफ़िर हुकूमत ने अपनी मसलिहत के लिये जो तालीम का तरीक़ा बनाया है और उससे उसके जो मक़ासिद हैं इन इम्तिहानात (मोलवी) फ़ाज़िल वगैरा) के देने से गोया मक़सद यह होता है कि उन मकासिद को पूरा करने के लिये इन काफ़िरों के इस निज़ाम के मददगार बल्कि उसके उजरती आल–ए–कार (मज़दूरी पर काम करने का ज़रीआ) बन्ने का हक़ पैदा किया जा सके। ग़ौर फ़रमाया जाय, दीन के इल्म पर इस से बड़ा ज़ुल्म और उसका इससे ज़्यादा ग़लत इस्तेमाल क्या होगा कि दीन के दुशमनों के तालीमी तरीक़ों की "ख़िदमत" का काम उससे लिया जाय। गोया यूँ समझिये

कि इन इम्तिहानात के ज़रिये इल्मे दीन की निसबत अल्लाह व रसूल के बजाय काफ़िरों और काफ़िर हुकूमत की तरफ़ की जाती है इसलिये यह बड़ी ख़तरनाक चीज़ है।

[9]

फ़रमाया—इल्म का सबसे पहला और अहम तक़ाज़ा यह है कि आदमी अपनी ज़िन्दगी का जायज़ा ले, अपने फ़रायज़ और अपनी कोताहियों को समझे और उनको अदा करने की फ़िक्र करने लगे, लेकिन अगर इसके बजाय वह अपने इल्म से दूसरों ही के आमाल का जायज़ा और उनकी कोताहियों को गिनने का काम लेता है तो फिर यह इल्मी घमण्ड व गुरुर है और जो अहले इल्म के लिये बड़ी हलाकत की चीज़ है।

[10]

इस सवाल पर बात करते हुये कि "मुसलमानों को हुकूमत व ताक़त क्यों नहीं बख़्शी जाती?"

फ़रमाया:-अल्लाह के अहकाम और अवामिर व नवाही[1] की हिफ़ाज़त व रिआयत जबकि तुम अपनी ज़ात और अपनी मन्ज़िली ज़िन्दगी[2] में नहीं कर रहे (जिस पर तुम्हें इख़्तियार हासिल है और कोई मजबूरी नहीं है) तो दुनिया का इन्तिज़ाम कैसे तुम्हारे हवाले कर दिया जाय।

ईमान वालों को ज़मीन की हुकूमत देने से तो ख़ुदा

---

1. वह चीज़ें जिनका हुक्म दिया गया और जिन से रोका गया।
2. आम जीवन

का इरादा यही होता है कि वह अल्लाह की मरज़ियात[1] और उसके अहकाम को दुनिया में जारी करें तो तुम जब अपने इख़्तियार की हद में आज यह नहीं कर रहे तो हुकूमत तुम्हारे सिपुर्द करके कल के लिये तुमसे इसकी क्या उम्मीद की जा सकती है?

[11]

फ़रमाया-जो लोग सरकार के वफ़ादार और हामी समझे जाते हैं असिल में वह किसी के भी वफ़ादार और हामी नहीं हैं बल्कि सिर्फ़ ग़रज़ के वफ़ादार हैं, अलबत्ता आज चूँकि उनकी नीची और छोटी ग़र्जें सरकार के दुशमनों से पूरी होने लगें तो वह उसी दर्जे में उनके भी हामी और वफ़ादार हो जायेंगे, वरना हक़ीक़ी तौर पर तो ऐसे ग़रज़मन्द लोग अपने बाप के भी वफ़ादार नहीं होते, तो उन लोगों की इस्लाह का तरीक़ा यह नहीं है कि उनको बुरा-भला कहा जाय, या बस सरकार की मुख़ालिफ़त पर उनको तय्यार किया जाय, उनकी अस्ली बीमारी "ग़रज़ परस्ती" है और जब तक यह उनमें मौजूद रहेगी अगर सरकार की मदद उन्होंने छोड़ भी दी तो अपनी ग़र्ज़ों के लिये वह किसी और ऐसी ताक़त के ऐसे ही वफ़ादार बनेंगे, इस लिये करने का काम यह है कि उनमें ग़रज़ परस्ती के बजाय ख़ुदा परस्ती पैदा की जाय और अल्लाह और उसके दीन का उन्हें सच्चा वफ़ादार बनाने की कोशिश की जाय। इसके बग़ैर उनकी बीमारी का इलाज नहीं हो सकता।

---

1. चाहतों।

[12]

फ़रमाया-यह आम क़ाएदा है कि हर आदमीको चैन उस चीज़ के हासिल करने से मिलता है जिसकी उसे मोहब्बत और चाहत हो, जैसे कि एक शख़्स को अमीरों वाली ज़िन्दगी, ज़्यादा क़ीमती खानों और कपड़ों से ही मोहब्बत है तो उसको उन चीज़ों के बग़ैर चैन व आराम नसीब नहीं हो सकता, लेकिन जिसको चटाई पर बैठना, बोरियों पर सोना, सादा लिबास और सादा खाना ज़्यादा पसन्दीदा हो, ज़ाहिर है कि उसको उसी में ज़्यादा चैन और सुख महसूस होगा। पस जिन लोगों को रसूलल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम के इत्तिबा[1] में सादी ज़िन्दगी पसन्द आ जाय और उनको उसी में मज़ा और चैन मिलने लगे उन पर अल्लाह तआला का बड़ा इनाम है कि उनका चैन ऐसी चीज़ों से वाबस्ता फ़रमा दिया जो बेहद सस्ती हैं और जिनका हासिल करना हर ग़रीब व फ़क़ीर के लिये बहुत आसान है। अगर मान लिया जाय कि हमारी पसन्द उन क़ीमती चीज़ों में रख दी जाती जो दौलतमन्दों ही को मिल सकती हैं तो शायद उमर भर हम बेचैन ही रहते।

[13]

फ़रमाया - हमको हुक्म है कि जो माल तुमको दुनिया में दिया जाय उसको रोको मत, यानी कन्जूसी मत करो, बल्कि ख़र्च करते रहो, लेकिन इस शर्त की पाबन्दी के साथ

---

1. पीछे चलना।

कि यह ख़र्च बे जगह भी न हो और वे सलीक़ा भी न हो, यानी यह ख़र्च सही जगह हो और अल्लाह के बतलाये हुये तरीक़े पर और उसकी मुक़र्रर की हुई हदों के अन्दर हो।

[14]

एक वक़्त ऐसा हुआ कि शायद बारिश वग़ैरह की वजह से मौलाना के यहाँ गोश्त नहीं आ सका और उस दिन मेहमानों में मेरे एक मोहतरम बुजुर्ग (जो हज़रत मौलाना के ख़ास अज़ीज़ भी हैं) वह भी थे, गोश्त के बारे में जिनकी पसन्द हज़रत मौलाना को मालूम थी, मैं भी हाज़िर था, मैंने देखा कि मौलाना पर इसका बहुत असर है कि आज दस्तरख़्वान पर गोश्त नहीं है। मुझे इस पर एक तरह क तअज़्ज़ुब हुआ कि यह कौन सी असर लेने की बात है?

थोड़ी देर के बाद उसी पर रन्ज व अफ़सोस करते हुये फ़रमाया : हदीस शरीफ़ में है :—

من كان يؤمن بالله واليوم الآخر فليكرم ضيفه .

जो शख़्स अल्लाह ओर आख़िरत के दिन पर ईमान रखता हो उसको चाहिये कि वह मेहमान का इकराम करे।

और मेहमान के इकराम और उसकी इज़्जत में से यह भी है कि उसकी पसन्द की चीज़ अगर मिल सकती हो फ़राहम की जाय। उसके बाद एक ख़ास दर्द के साथ फ़रमाया।

فكيف باضياف الله واضياف رسوله

(जिसका मतलब यह है कि जब किसी के यहां ऐसे मेहमान आये जो सिर्फ़ अल्लाह व रसूल की वजह से और उन्हीं के तअल्लुक़ और उन्ही के काम से आते हैं तो उनका हक़ तो और भी ज़्यादा हो जाता है)।

[15]

फ़रमाया-जन्नत हुक़ूक़ का बदला है यानी अपने हुक़ूक़, अपना चैन और अपना आराम अल्लाह के लिये मिटाया जाय और अपने पर तकलीफ़ बरदाश्त करके दूसरों के हुक़ूक़ अदा किये जायें (जिनमें अल्लाह के हुक़ूक़ भी शामिल हैं) तो इसी का बदला जन्नत है (इसी सिलसिले में फ़रमाया) हदीस में इरशाद हुआ है:–

اِرْحَمُوْا مَنْ فِي الْاَرْضِ يَرْحَمْكُمْ مَنْ فِي السَّمَاءِ

तुम ज़मीन वालों पर रहम खाओ, आसमान का रब तुम पर रहमत फ़रमायेगा।

हदीस में दो औरतों के दो क़िस्से बयान किये गये हैं जो आम तौर से मालूम और मशहूर हैं। एक यह कि किसी बुरे काम करने वाली और ख़राब औरत ने कुत्ते की ख़बर गीरी की और उसकी प्यास पर तरस खाकर कुंवें से पानी निकाल के उसको पिलाया, तो अल्लाह ने उसके इस काम

के बदले उसके लिये जन्नत का फ़ैसला फ़रमा दिया और एक दूसरी औरत ने जो बुरे काम करने वाली नहीं थी एक बिल्ली को भूखा रख कर तड़पा-तड़पा कर मार डाला तो वह जहन्नुम में डाल दी गई!

[16]

फ़रमाया—रसूलल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम मक्का मुअज़्ज़मा में (हिजरत से पहले) जो काम करते थे यानी चल फिर कर लोगों को हक़ की तरफ़ बुलाना और इस मक़सद के लिये खुद उनके पास जाना, बज़ाहिर मदीना तय्यिबा पहुंचकर यह काम आपका नहीं रहा बल्कि वहां आप स० अपना एक ठिकाना बनाकर बैठे, लेकिन यह आपने उस वक़्त किया जबकि मक्का वाली दावत को संभालने वालों और उस काम को अच्छे तरीक़े से पूरा करने वालों की एक ख़ास जमाअत आप स० ने तैयार कर दी। और फिर इस काम ही का यह तक़ाज़ा हुआ कि आप स. एक मरकज़ में बैठ के इस काम को अच्छे तरीक़े से चलायें और काम करने वालों से काम लें। इसी तरह हज़रत उमर रज़ियल्लाहु अन्हु को मदीना तय्यिबा ही के मरकज़ में ठहरे रहना उस वक़्त दुरुस्त हुआ जबकि ईरान व रुम के इलाकों में अल्लाह के कलिमे को बुलन्द (ऊँचा) करने के लिये जिहाद करने वाले अल्लाह के हज़ारों बन्दे पैदा हो चुके थे और ज़रूरत थी कि हज़रत उमर र. मरकज़ ही में रहकर इस हक़ की दावत और अल्लाह के रास्ते में जिहाद के काम को मज़बूती के साथ चलायें।

[17]

फ़रमाया-हदीस में है कि रसूलल्लाह स. ने सिद्दी के अकबर रज़ियल्लाहु अन्हु को तालीम दी कि वह नमाज़ के अख़िर में अल्लाह तआला से यूँ अर्ज़ किया करें:-

اَللّٰهُمَّ اِنِّیْ ظَلَمْتُ نَفْسِیْ ظُلْمًا كَثِیْرًا وَّلَا
یَغْفِرُ الذُّنُوْبَ اِلَّا اَنْتَ فَاغْفِرْ لِیْ مَغْفِرَةً
مِّنْ عِنْدِكَ وَارْحَمْنِیْ اِنَّكَ اَنْتَ الْغَفُوْرُ الرَّحِیْمُ

ऐ अल्लाह! मैंने अपने पर बड़ा ज़ुल्म किया, और तेरे सिवा कोई गुनाहों और ख़ताओं का बख़्शने वाला नहीं, बस तू सिर्फ़ अपने फ़ज़्ल व करम से (जिसमें मेरे हक़ को कोई दख़ल नहीं है) मुझे बख़्श दे और मुझ पर रहम फ़रमा, बख़्शने वाला और रहम करने वाला यक़ीनन तू ही है।

ज़रा सोचिये हुज़ूर (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने यह दुआ हज़रत अबू बकर सिद्दीक़ रज़ियल्लाहु अन्हु को नसीहत फ़रमाई जो इस सारी उम्मत में अकमल व अफ़ज़ल हैं, और ख़ास तौर से उनकी नमाज़ खुद रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम के नज़दीक ऐसी कामिल (पूरी) होती थी कि आपने उनको खुद नमाज़ का इमाम बनाया, बावजूद इसके उनको भी यह तालीम फ़रमाया कि नमाज़ के आख़िर में अल्लाह पाक के हुज़ूर अपनी कोताही और इबादत का हक़ अदा न हो सकने का एतिराफ़ इस तरह किया करो, और इस तरह सिर्फ़ उसके फ़ज़्ल व करम[1] में मग्फ़िरत व रहमत की दरख़्वास्त किया करो—फिर कहाँ हम और तुम।

---

1. बख़शिश व दया

[18]

फ़रमाया-इनसान का क़याम[1] ज़मीन के उपर बहुत कम है (यानी ज़्यादा कुदरती उमर की मिक़दार) और ज़मीन के नीचे उसको इससे बहुत ज़्यादा क़यास करना है। या यूँ समझो कि दुनिया में तो तुम्हारा क़याम है बहुत थोड़ा, और उसके बाद जिन–जिन मक़ामात पर ठहरना है जैसे मरने के बाद पहली सूर फूँके जाने तक क़ब्र में, उसके बाद दूसरी सूर फूँके जाने तक उस हालत में जिसको अल्लाह ही जानता है (और यह मुद्दत भी हज़ारों साल की होगी) और फिर हज़ारों साल ही महशर में, उसके बाद आख़िरत में जिस ठिकाने का फ़ैसला हो। ग़र्ज़ दुनिया से गुज़रने के बाद हर मन्ज़िल और मक़ाम का क़याम दुनिया से सैकड़ों ही गुना ज़्यादा है। फिर इनसान की कैसी ग़फ़लत है कि दुनिया के चन्द रोज़ा क़याम के लिये वह जितना कुछ करता है उन दूसरे मक़ामात के लिये इतना भी नहीं करता।

[19]

फ़रमाया-"असली अल्लाह का ज़िक्र" यह है कि आदमी जिस मौक़े पर और जिस हाल और जिस काम में हो उसके मुतअल्लिक़ अल्लाह के जो अहकाम व अवामिर हो उनकी निगरानी और उन पर अमल रखे, और मैं अपने दोस्तों को उसी "ज़िक्र" की ज़्यादा ताकीद करता हूं।

---

1. ठहरना

[20]

फ़रमाया-इनसान को अपने अलावा दूसरी चीज़ों पर जो फ़ौक़ और बड़ाई हासिल है उसमें ज़बान को ख़ास दख़ल है। अब अगर ज़बान से आदमी अच्छी बातें करता है और भलाई ही में उसको इस्तेमाल करता है तो यह फ़ौक़ियत और बरतरी उसको भलाई में हासिल होगी, और अगर ज़बान को उसने बुराई करने का सामान बना रखा है, जैसे बुरी बातें बकता है और बिना वजह लोगों को तकलीफ़ देता है, तो फिर उसी ज़बान की बदौलत वह बुराई में मशहूर और ऊँचा होगा यहाँ तक कि कभी-कभी यही ज़बान आदमी को कुत्ते और सुअर से भी बदतर[1] कर देगी। हदीस शरीफ़ में है :- وهل يكب الناس في النار على مناخرهم الا حصائد السنتهم

यानी आदमियों को दोज़ख में औंधे मुंह उनकी बकवास ही डालेगी।

اللهم احفظنا

1. ज़्यादा बुरा

क़िस्त नम्बर-2

[21]

एक दिन सुबह की नमाज़ के बाद दीन की ख़िदमत और दीन की मदद की तरग़ीब[1] देते हुये बात करने का सिलसिला इस तरह शुरु फ़रमायाः—

देखो सब जानते और मानते हैं कि खुदा ग़ायब नहीं है बल्कि शाहिद[2] है और वक़्त शाहिद है, तो उसके हाज़िर नाज़िर होते हुये बन्दों का उसमें न लगना और उसके ग़ैरों में लगा रहना यानी उस से बचना और उसके अलावा में लग जाना, सोचो कि कैसी बेनसीबी और कितनी बड़ी महरूमी है। और अन्दाज़ा करो कि यह चीज़ खुदा को कितनी गुस्सा दिलाने वाली होगी?— और खुदा के दीन के काम से ग़ाफ़िल रहना और उसके हुकमों का लिहाज़ न रखते हुये दुनिया में लगा रहना ही उससे एराज़[3] और उसके अलावा में मशग़ूलियत व मसरूफ़ियत है, और इसके बरअक्स,[4] अल्लाह में लगना यह है कि उसके दीन की मदद करने में लगा रहे और उसके हुक्मों की फ़रमांबरदारी करता

---

1. प्रोत्साहन 2. मौजूद 3. मुंहमौंड़ना
4. विपरीत

रहे, मगर इसका ध्यान रखना पड़ेगा कि जो बात जितनी ज़्यादा अहम और जितनी ज़्यादा ज़रूरी हो उसकी तरफ़ उसी क़दर तवज्जोह दी जाय और यह चीज़ मालूम होगी रसूलल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम के उसवए हसना[1] से। और मालूम है कि आप स. ने जिस काम के लिये सब से ज़्यादा मेहनत की और सब से ज़्यादा तकलीफ़ें बरदाश्त कीं वह काम था कलिमे का फैलाना, यानि बन्दों को ख़ुदा की बंदगी के लिये तय्यार करना और उसकी राह पर लगाना। तो यही काम सब से ज़्यादा अहम रहेगा और इस काम में लगना आला[2] दर्जे का ख़ुदा में लगना होगा।

[22]

एक बैठक में फ़रमाया—लोगों ने अल्लाह की गुलामी और बन्दगी को इन्सानों की गुलामी और नौकरी से भी कम दर्जा दे रखा है। गुलामों और नौकरों का आम हाल यह होता है कि वह हर वक़्त अपने मालिक के काम में लगा रहना ही अपना काम और अपनी ज़िम्मेदारी समझते हैं और उसके बीच में दौड़ते भागते जो कुछ हाथ लग जाता है खा पी लेते हैं। लेकिन अल्लाह पाक के साथ अब बन्दों का यह मामला रह गया है कि मुस्तकिल तौर से तो वह अपने और बिल्कुल अपने कामों और अपनी पसन्द व मज़ेदार चीजों में अपने ही लिये लगे रहते हैं और कभी—कभी कुछ वक़्त अपने उन ज़ाती कामों और पसन्दीदा चीज़ों से निकाल कर ख़ुदा का कोई काम भी कर लेते हैं। जैसे नमाज़ पढ़ लेते हैं या

1. अच्छे नमूने 2. ऊँचे

भलाई के कामों में चन्दा दे देते हैं और समझते हैं कि बस ख़ुदा और दीन का मुतालबह[1] हमसे अदा हो गया। हालांकि बन्दगी का हक़ यह है कि असल में और मुस्तिक़िल तो हो दीन का काम, और अपना खाना पीना और उसके लिये सामान जुटाना उसके बाद की चीज है। (इसका मतलब यह नहीं है कि सब लोग अपने अपने रोज़ी कमाने के साधनों और कारोबार को छोड़ दें, नहीं बल्कि मतलब यह है कि जो कुछ हो उसकी बन्दगी के तहत हो और उसके दीन की ख़िदमत और नुसरत[2] का सब में ख़्याल रखा जाय, और अपने खाने पीने वग़ैरा की हैसियत सिर्फ़ ज़िमनी हो जिस तरह एक ग़ुलाम की अपने मालिक के कारोबार में होती है।

[23]

एक दिन किसी वक़्त की नमाज़ एक साहब ने पढ़ाई, नमाज़ के बाद यह दुआ भी की (जो हज़रत मौलाना भी कसरत से किया करते थे)।

اَللّٰهُمَّ انْصُرْ مَنْ نَصَرَ دِيْنَ مُحَمَّدٍ صَلَّى اللّٰهُ عَلَيْهِ وَسَلَّمَ وَاخْذُلْ مَنْ خَذَلَ دِيْنَ مُحَمَّدٍ صَلَّى اللّٰهُ عَلَيْهِ وَسَلَّمَ

(ऐ अल्लाह मोहम्मद सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम के दीन की जो लोग मदद करें तू उनकी मदद फ़रमा और जो उस दीन की मदद न करे उनकी तू भी कोई मदद न फ़रमा)

1. मांग 2. मदद

हज़रत मौलाना ने इस पर तीन बार बुलन्द आवाज़ से एक ख़ास दर्द के साथ फ़रमाया,

اَللّٰهُمَّ لَا تَجْعَلْنَا مِنْهُمْ، اَللّٰهُمَّ لَا تَجْعَلْنَا مِنْهُمْ
اَللّٰهُمَّ لَا تَجْعَلْنَا مِنْهُمْ.

फिर हाज़रीन को मुख़ातिब करते हुए फ़रमाया :–

भाइयो! इस दुआ पर ग़ौर करो और इसका वज़न समझो, यह वह दुआ और बद दुआ है जिसको क़रीबन हर ज़माने में अल्लाह के ख़ास बन्दे करते चले आये हैं। यह बड़ी भारी दुआ है, इसमें दीन की मदद करने वालों और उस राह में कोशिश करने वालों के लिये तो रहमत व नुसरत[1] की दुआ है लेकिन दीन की मदद न करने वालों के हक़ में बड़ी ख़तरनाक बद दुआ है कि ख़ुदा उनको अपनी रहमत व नुसरत से महरूम करदे।

अब हर शख़्स इस दुआ को अपने ऊपर रख कर देखे कि वह इसकी अच्छी दुआ का मिस्दाक़[2] है या बद दुआ का निशाना। यह भी ख़्याल रहे कि अपनी अपनी नमाज़ें पढ़ना, रोज़े रखना, अगर्चे आला दर्जे की इबादतें हैं लेकिन यह दीन की नुसरत के काम नहीं हैं। दीन की नुसरत तो वही है जिसको क़ुरआने पाक और अल्लाह के रसूल सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने "नुसरत" बतलाया है और उसका असली

1. मदद 2. हक़दार

और मक़बूलतरीन तरीक़ा भी वही है जिसको आँहज़रत सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने रिवाज दिया—इस वक़्त इस तरीक़े और इस रिवाज को ताज़ा करने और फिर से इसको जारी करने की कोशिश करना ही दीन की सबसे बड़ी नुसरत है, अल्लाह पाक हम सबको इसकी तौफ़ीक़ दे।

क़िस्त नम्बर-3

इस क़िस्त के तमाम मलफ़ूज़ात उस दीनी तहरीक व दावत ही से मुतअल्लिक़ हैं जिसके लिये हज़रत रहमतुल्लाह अलैह मर मिटे थे। इस दावत के काम करने वालों को बहुत ग़ौर से इन मलफ़ूज़ात को पढ़ना चाहिये।

[24]

एक बैठक में फ़रमाया-

हमारी इस तहरीक का अस्ल मक़सद है मुसलमानों

"جَمِيعُ مَا جَاءَ بِهِ النَّبِيُّ"

को सिखाना (यानि इस्लाम के पूरे इल्मी व अमली निज़ाम से उम्मत को जोड़ देना) यह तो है हमारा अस्ल मक़सद, रही क़ाफ़िलों की यह चलत फिरत और तबलीग़ी गश्त तो यह उस मक़सद को पाने के लिये इबतिदाई ज़रीआ है, और कल्मा व नमाज़ की तलक़ीन व तालीम गोया हमारे पूरे निसाब की "अलिफ़, बे, ते" है। यह भी ज़ाहिर है कि हमारे क़ाफ़िले पूरा काम नहीं कर सकते, उनसे तो बस इतना ही हो सकता है कि हर जगह पहुंचकर अपनी कोशिश से एक हरकत व बेदारी पैदा कर दें और ग़ाफ़िलों को मुतवज्जेह

करके वहाँ के मक़ामी अहले दीन से जोड़ने की और जगह के दीन की फ़िक्र रखने वालों (उलमा व सुलहा) को बेचारे आवाम की इस्लाह पर लगा देने की कोशिश करें। हर जगह पर असली काम तो वहीं के काम करने वाले कर सकेंगे। और आवाम को ज़्यादा फ़ायदा अपनी जगह के अहले दीन से फ़ायदा हासिल करने में होगा। अलबत्ता इसका तरीक़ा हमारे उन आदमियों से सीखा जाय जो एक ज़माने से फ़ायदा पहुंचाना और फ़ायदा हासिल करना और इल्म सीखना व सिखाना के इस तरीक़े पर अमल करने वाले हैं और उस पर बड़ी हद तक क़ाबू पाचुके हैं।

[25]

एक बैठक में फ़रमाया-हमारे काम करने वाले इस बात को मज़बूती से याद रखें कि अगर उनकी दावत व तबलीग़ कहीं कुबुल न की जाय और उल्टा उनको बुरा–भला कहा जाय, इल्ज़ामात लगाये जायें तो वह मायूस और रंजीदह न हों और ऐसे मौक़े पर यह याद करलें कि यह अम्बिया अलैहिमुस्सलाम और ख़ास तौर से नबियों के सरदार सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम की ख़ास सुन्नत और विरासत है, ख़ुदा की राह में ज़लील होना हर एक को कहाँ नसीब होता है। और जहाँ उनका इस्तिक़बाल (स्वागत) एज़ाज़ व इकराम से किया जाय उनकी दावत व तबलीग़ की क़दर की जाय और तलब के साथ उनकी बातें सुनी जायें तो इसको अल्लाह पाक का फ़क़त इनआम समझें और हरगिज उसकी नाक़दरी न करें, उन तालिबों की ख़िदमत और तालीम को अल्लाह

के इस एहसान का ख़ास शुक्रिया समझें अगर्चे यह छोटे से छोटे तबके के लोग हों। कुरआन की आयात में हमको यही सबक़ दिया गया है।

عَبَسَ وَتَوَلّٰٓى اَنْ جَآءَهُ الْاَعْمٰى

हाँ इस सूरत में अपने नफ़्स के फ़रेब से भी डरते रहें, नफ़्स इस इज़्ज़त और मक़बूलियत को अपना कमाल न समझने लगे, और इसमें "पीर परस्ती" के फ़ितने का भी बड़ा डर है इसलिये इस से ख़ास तौर से ख़बरदार रहें।

[26]

एक बैठक में फ़रमाया-सब काम करने वालों को समझा दो कि इस राह में बलाओं और तकलीफ़ों को खुदा से मांगें तो हरगिज़ नहीं (बन्दे को अल्लाह से हमेशा सुकून व आफ़ियत ही मांगना चाहिये) लेकिन अगर अल्लाह पाक इस राह में यह मुसीबतें भेज दे तो फिर उनको खुदा की रहमत और बुराइयों के कफ़्फ़ारे का और दरजों के बुलन्द होने का ज़रिआ समझा जाय। खुदा की राह में इस क़िस्म की मुसीबतें तो अम्बिया व सिद्दीक़ीन और मुक़र्रबीन की ख़ास ग़िज़ायें हैं।

[27]

एक बैठक में फ़रमाया-तबलीग़ व दावत के वक़्त ख़ास तौर से अपने बातिन (अन्दर) का रूख़ अल्लाह पाक ही की तरफ़ रखना चाहिये न कि सुन्ने वालों की तरफ़, गोया उस वक़्त हमारा ध्यान यह होना चाहिये कि हम अपने किसी काम और अपनी ज़ाती राय से नहीं बल्कि अल्लाह के हुक्म से

और उसके काम के लिये निकले हैं, सुन्ने वालों की तौफ़ीक भी उसी के क़ब्ज़–ए–क़ुदरत में है। जब उस वक़्त यह ध्यान होगा तो इन्शाअल्लाह सुन्ने वालों के ग़लत बरताव से न तो गुस्सा आयगा और न हिम्मत टूटेगी।

[28]

फ़रमाया-कैसा ग़लत रिवाज हो गया है, दूसरे लोग हमारी बात मान लें तो उसको हमारी नाकामी समझा जाता है, हालाँकि इस राह में यह ख़्याल करना बिल्कुल ही ग़लत है। दूसरों का मानना या न मानना तो उनका काम है, उनके किसी काम से हम कामियाब या नाकाम क्यों किये जायें, हमारी कामियाबी यही है कि हम अपना काम पूरा करदें, अब अगर दूसरों ने न माना तो यह उनकी नाकामी है हम उनके न मानने से नाकामयाब क्यों हो गये। लोग भूल गये, वह मनवादेने को (जो दर हक़ीक़त ख़ुदा का काम है) अपना काम और अपनी ज़िम्मेदारी समझने लगे, हालांकि हमारी ज़िम्मेदारी सिर्फ़ अच्छे तरीक़े से अपनी कोशिश लगा देना है, मनवाने का काम तो पैग़म्बरों के सिपुर्द भी नहीं किया गया।

हाँ न मानने से यह सबक़ लेना चाहिये कि शायद हमारी कोशिश में कमी रही और हमसे हक़ अदा न हो सका जिसकी वजह से अल्लाह पाक ने यह नतीजा हमें दिखाया। और उसके बाद अपनी कोशिश की मिक़दार को बढ़ा देने और दुआ व तौफ़ीक़ माँगने में भी जितना हो सके इज़ाफ़ा करने का पक्का इरादा कर लेना चाहिये।

[29]

फ़रमाया - हमारे आम काम करने वाले जहाँ भी जायें वहाँ के हक़्क़ानी आलिमों व नेक लोगों की ख़िदमत में हाज़िरी की कोशिश करें। लेकिन यह हाज़िरी सिर्फ़ फ़ायदा हासिल करने की नियत से हो और उन हज़रात को सीधे इस काम की दावत न दें। वह हज़रात जिन दीनी कामों में लगे हुये हैं उनको तो वह ख़ूब जानते हैं और उनके मुनाफ़े का वह तजुर्बा रखते हैं और तुम अपनी यह बात उनको अच्छी तरह से समझा न सकोगे। यानी तुम उनको अपनी बातों से इसका यक़ीन नहीं दिला सकोगे कि यह काम उनके दूसरे कामों से ज़्यादा दीन के लिये मुफ़ीद और ज़्यादा नफ़ा देने वाला है। नतीजा यह होगा कि वह तुम्हारी बात को मानेंगे नहीं, और जब एक दफ़ा उनकी तरफ़ से "न" हो जायेगी तो फिर उस "न" का कभी भी "हाँ" से बदलना मुश्किल हो जायेगा। फिर इसका एक बुरा नतीजा यह हो सकता है कि उनके अक़ीदतमंद अवाम भी फिर तुम्हारी बात न सुनें, और यह भी मुम्किन है कि ख़ुद तुम्हारे अन्दर हिचकिचाहट पैदा हो जाय। इस लिये उनकी ख़िदमत में बस फ़ायदा हासिल करने के लिये ही जाया जाय। लेकिन उनके माहौल में निहायत मेहनत से काम किया जाय और उसूलों की ज़्यादा रिआयत की कोशिश की जाय। इस तरह उम्मीद है कि तुम्हारे काम और उसके नतीजों की इत्तिलाऐं ख़ुद बख़ुद उनको पहुंचेंगी और वह उनको इस काम की तरफ़ बुलाने वाली और उनकी तवज्जोह को अपनी तरफ़ खींचने

वाली हो जायेंगी। फिर अगर इसके बाद वह ख़ुद तुम्हारी तरफ़ और तुम्हारे काम की तरफ़ मुतवज्जेह हों तो उनसे सरपरस्ती और ख़बर गीरी की दरख़्वास्त की जाय और उनके दीनी अदब व एहतिराम का ख़्याल रखते हुये अपनी बात उनसे कही जाय।

[30]

फ़रमाया-अगर कहीं देखा जाय कि वहाँ के उलमा और सुलहा इस काम की तरफ़ हमदरदाना तौर से मुतवज्जेह नहीं होते तो उनकी तरफ़ से बदगुमानियों को दिल में जगह न दी जाय, बल्कि यह समझा लिया जाय कि चूंकि यह दीन के ख़ास ख़ादिम हैं, इस लिये शैतान उनका हमसे ज़्यादा गहरा दुश्मन है (चोर धन–दौलत ही पर तो आता है) इसके अलावा यह भी समझने की बात है कि दुनिया जो हक़ीर व ज़लील चीज़ है जब उसके गिरफ़्तार अपने दीनी कामों पर उस काम को तरजीह (श्रेष्टता) नहीं दे सकते और अपने कामों व मसरूफ़ियात को छोड़ कर इस काम में नहीं लग सकते तो अहले दीन अपने आला (ऊँचे) कामों को इस काम के लिये कैसे आसानी से छोड़ सकते हैं। उरफ़ा (अल्लाह को पहचानने वालों) ने कहा है कि "नूरानी हिजाबात, ज़ुलमानी हिजाबात से कई दर्जे ज़्यादा शदीद होते हैं।"

[31]

एक बैठक में फ़रमाया-तबलीग़ के उसूलों में से एक यह भी है कि आम ख़िताब (तक़रीर) में पूरी सख़्ती हो और

ख़ास ख़िताब में नरमी, बल्कि जहां तक हो सके ख़ास लोगों की इस्लाह के लिये भी अमूमी ख़िताब ही किया जाए। आँ हज़रत सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम को ख़ास लोगों का भी कोई जुर्म मालूम होता तो भी अकसर आप "मा बा ल अक़वामुन" (लोगों को किया हो गया है) कह कर ही ख़िताब व इताब फ़रमाते।

[32]

एक बैठक में फ़रमाया-बातों से ख़ुश हो लेना हमारी आदत हो गई है। और अच्छे काम की बातें कर लेने को हम असल काम के क़ायम मक़ाम समझ लेते हैं। इस आदत को छोड़ो काम करो काम।

[33]

एक बैठक में फ़रमाया-वक़्त चलती हुई एक रेल है, घन्टे, मिनट और लमहे गोया उसके डिब्बे हैं, और हमारे मशाग़िल (काम) उसमें बैठने वाली सवारियां है। अब हमारे दुनियावी और माद्दी ज़लील मशाग़िल ने हमारी ज़िन्दगी की रेल के उन डिब्बों पर ऐसा क़ब्ज़ा करलिया है कि वह शरीफ़ आख़िरत के मशाग़िल को आने नहीं देते। हमारा काम यह है कि इरादे से काम लेके उन ज़लील और रज़ील मशाग़िल की जगह उन शरीफ़ और ऊँचे मशाग़िल को क़ाबिज़ करदें जो ख़ुदा को राज़ी करने वाले और हमारी आख़िरत को बनाने वाले हैं।

[34]

एक बैठक में फ़रमाया-जितना भी अच्छे से अच्छा काम करने की अल्लाह तौफ़ीक़ दे हमेशा उसका ख़ात्मा इस्तिग़फ़ार पर ही किया जाय। ग़रज़ हमारे हर काम का आख़िरी हिस्सा इस्तिग़फ़ार हो। यानी यह समझ कर कि मुझसे यक़ीनन उसकी अदायगी में कोताहियाँ हुई हैं, उन कोताहियों के लिये अल्लाह से माफ़ी मांगी जाय। रसूल्लाह सल्लल्लाहू अलैहि वसल्लम नमाज़ के ख़त्म पर भी अल्लाह से इस्तिग़फ़ार किया करते थे। लिहाज़ा तबलीग़ का काम भी हमेशा इस्तिग़फ़ार ही पर ख़त्म किया जाय। बन्दे से किसी तरह भी अल्लाह के काम का हक़ अदा नहीं हो सकता, इसके अलावा एक काम में मशग़ूलियत बहुत से दूसरे कामों के न हो सकने की भी वजह बन जाती है, तो इस क़िस्म की चीज़ों के बदले के लिये भी हर अच्छे काम के ख़त्म पर इस्तिग़फ़ार करना चाहिये।

[35]

एक दिन फ़ज्र की नमाज़ के बाद जबकि इस तहरीक में अमली हिस्सा लेने वालों का निज़ामुद्दीन की मस्जिद में बड़ा मजमा था और हज़रत मौलाना की तबिअत इस क़दर कमज़ोर थी कि विस्तर पर लेटे-लेटे भी दो चार लफ़्ज़ आवाज़ से नहीं फ़रमा सकते थे तो इहतिमाम से एक ख़ास ख़ादिम को बुलवाया और उसके वास्ते से उस पूरी जमाअत

से कहलवाया कि – आप लोगों की यह सारी चलत फिरत ओर सारी कोशिश बेकार होगी अगर उसे साथ इल्मेदीन और ज़िकरुल्लाह का पूरा इहतिमाम आपने नहीं किया (गोया यह इल्म व ज़िक्र दो बाज़ू हैं जिनके बग़ैर इस फ़िज़ा में उड़ा नहीं जा सकता) बल्कि सख़्त ख़तरा और पक्का डर है कि अगर इन दो चीज़ों की तरफ़ से ग़फ़लत बरती गई तो यह कोशिश कहीं फ़ितना और गुमराही का एक नया दरवाज़ा न बन जाय। दीन का अगर इल्म ही न हो तो इस्लाम व ईमान सिर्फ़ रस्मी और नाम के हैं, और अल्लाह के ज़िक्र के बग़ैर अगर इल्म हो भी तो वह सरासर ज़ुलमत है ओर इसी तरह अगर दीन के इल्म के बग़ैर अल्लाह के ज़िक्र की कसरत भी हो तो इसमें भी बड़ा ख़तरा है, ग़रज़ कि इल्म में नूर ज़िक्र से आता है और दीन के इल्म के ज़िक्र से आता है और दीन के इल्म के ज़िक्र के बग़ैर हक़ीक़ी बरकात व नतीजे हासिल नहीं होते, बल्कि बाज़ औक़ात ऐसे जाहिल सूफ़ियों को शैतान अपना काम का आला बना लेता है। इसलिये इल्म व ज़िक्र की अहमियत को इस सिलसिले में कभी भूला न जाय और उसका हमेशा ख़ास इहतिमाम रखा जाय, वरना आपकी यह तबलीग़ी तहरीक भी बस एक आवारा गरदी होकर रह जायगी, और ख़ुदा न करे आप लोग सख़्त घाटे में रहेंगे।

(हज़रत मौलाना का मतलब इस हिदायत से यह था कि इस राह में काम करने वाले तबलीग़ व दावत के सिलसिले

की मेहनत व मशक़्क़त, सफ़र व हिजरत और ईसार व कुरबानी ही को अस्ल काम न समझें, जैसा कि आज-कल आम हवा है, बल्कि दीन के सीखने व सिखाने और अल्लाह के ज़िक्र की आदत डालने और उससे तअल्लुक़ पैदा करने को अपना अहम फ़र्ज़ समझें, दूसरे शब्दों में उनको सिर्फ़ "सिपाही" और "वालन्टियर" बनना नहीं है बल्कि तालिबे इल्मे दीन और "अल्लाह का याद करने वाला बन्दा" भी बनना है।)

क़िस्त नम्बर-4

इस क़िस्त के तमाम मलफ़ूज़ात हज़रत मौलाना ज़फ़र अहमद साहब थानवी के तरतीब दिये हुये हैं।

[36]

आख़िरी दफ़ा जब मैं जून के महीने में हाज़िर हुआ तो देखते ही फ़ारसी का यह शेर पढ़ा :

ब-लबम रसीदह जानम तो बया कि ज़िन्दह मानम पस अज़ाँ कि मन न मानम ब चेह कार ख़्वाही आमद

मुझ पर इतना असर हुआ कि आँखों में आंसू आ गये। फिर फ़रमाया कि वादा भी याद है? (मैंने वादा किया था कि कुछ दिन तबलीग़ में दूँगा) अर्ज़ किया याद है मगर इस वक़्त तो देहली में गरमी बहुत है रमज़ान में छुट्टी होगी तो रमज़ान के बाद वक़्त दूँगा।

फ़रमाया : رحمہ اللہ تعالیٰ رحمۃ الابرار الصالحین

"तुम रमज़ान की बातें करते हो यहां शअबान

की भी उम्मीद नहीं।"[1]

मैंने अर्ज़ किया "बहुत अच्छा अब मैं ठहर गया, आप दिल बुरा न करें, मैं अभी तबलीग़ में वक़्त दूँगा।"

यह सुनकर चेहरा ख़ुशी से चमक उठा, मेरे गले में बाहें डाल दीं और पेशानी को बोसह दिया और देर तक सीने से लिपटाये रखा और बहुत दुआयें दीं। फिर फ़रमाया—तुमने मेरी तरफ़ रूख़ तो किया है, बहुत से उलमा तो दूर—दूर ही से मेरे मक़सद को समझना चाहते हैं। फिर एक बड़े आलिम का नाम लिया कि वह तबलीग में आज—कल बहुत हिस्सा ले रहें हैं मगर मुझसे पूछो तो वह अब तक भी मेरे मनशा को नहीं समझ सके, क्योंकि मुझ से आज तक बिला वास्ता गुफ़्तगू नहीं की, वसायत (साधनों) से गुफ़्तगू की है, अब मैं वसायत से अपने मनशा को क्योंकर समझा दूं, ख़ास तौर से जबकि वसायत भी हों, इस लिये मैं चाहता हूँ कि तुम कुछ दिनों मेरे पास रहो तो मेरी मनशा को समझोगे, दूर रह कर नहीं समझ सकते, यह मैं जानता हूँ कि तुम तबलीग़ में हिस्सा लेते हो, जलसों में तक़रीर करते हो, तुम्हारी तक़रीर से नफ़ा भी होता है, मगर यह तबलीग़ वह नहीं जो मैं चाहता हूं।

---

1. चुनान्चे शअ़बान आने में अभी एक अशरा (दस दिन) बाक़ी था कि 21, रजब 1363 हिजरी की सुबह को रफ़ीक़—ए—आला (अल्लाह तआला) से जा मिले।

[37]

एक बैठक में फ़रमाया - हदीस में है

اَلدُّنْيَا سِجْنُ الْمُؤْمِنِ وَجَنَّةُ الْكَافِرِ

इसका मतलब यह है कि हम दुनिया में नफ़्स कि हिमायत और नफ़्सानी ख़्वाहिशात के मुताबिक़ चलने के लिये नहीं भेजे गये जिससे यह दुनिया आदमी के लिये जन्नत बन जाती है बल्कि हम नफ़्स की मुख़ालिफ़त और अल्लाह के अहकाम की इताअत के लिये भेजे गये हैं जिससे यह दुनिया "मोमिन" के लिये "सिज्न" (जेलख़ाना) बन जाती है, पस अगर हम भी काफ़िरों की तरह नफ़्स की हिमायत व तरफ़दारी करके दुनिया को अपने लिये जन्नत बनायेंगे तो हम काफ़िरों की जन्नन पर क़ब्ज़ा करने वाले और हड़पने वाले होंगे और इस सूरत में ख़ुदाई मदद क़ब्ज़ा करने और हड़पने वालों के साथ न होगी बल्कि उन लोगों के साथ होगी जिनकी जन्नत पर क़ब्ज़ा किया गया, यानी काफ़िरों के साथ। फ़रमाया, इसमें अच्छी तरह ग़ौर करो।

[38]

फ़रमाया—लोग मेरी तबलीग़ के बरकात देख कर यह समझते हैं कि काम हो रहा है, हालांकि काम और चीज़ है और बरकात और चीज़ हैं। देखो रसूलल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम की पैदाइश ही से बरकात का ज़हूर होने लगा था मगर काम बहुत बाद में शुरू हुआ, इसी तरह यहाँ

समझो। मैं सच कहता हूं कि अभी तक असली काम शुरू नहीं हुआ-जिस दिन काम शुरू हुआ, इसी तरह यहाँ समझो। मैं सच कहता हूं कि अभी तक असली काम शुरू नहीं हुआ-जिस दिन काम शुरू हो जायेगा तो मुसलमान सात सौ बरस पहले की हालत की तरफ़ लौट जायेंगे, और अगर काम शुरू न हुआ बल्कि इसी हालत पर रहा जिस पर अब तक है और लोगों ने इसको दूसरी तमाम तहरीकात की तरह एक तहरीक समझ लिया और काम करने वाले इस राह में बिचल गये तो जो फ़ितने सदयों में आते वह महीनों में आजायेंगे, इस लिये इसको समझने की ज़रूरत है।

[39]

एक जुमे को देहली की असम्बली मस्जिद में जुमा की नमाज़ से पहले मेरा बयान हुआ, मौलाना ही की राय थी कि वहाँ बयान होना चाहिये। नमाज़ के बाद मैं उसी रोज़ निज़ामुद्दीन वापस न हुआ अपने रिशतेदारों के पास रात को रह गया अगले दिन निज़ामुद्दीन पहुंचा और माज़ेरत की कि रिश्तेदारों के ज़िद करने की वजह से रात को देहली रह गया था। फ़रमाया, अरे मौलाना इस माज़ेरत की ज़रूरत नहीं, काम में लगने वालों को ऐसी परेशानियां पेश आया ही करती हैं, इसकी परवाह नहीं, अच्छा यह बतलाओ मस्जिद असम्बली में वाज़ हुआ था? जी हाँ हुआ था। बहुत ख़ुश हुए और फ़रमाया, देखो यह लोग ख़ुद अपनी तलब से हमको नहीं बुलाते। इनको दुनिया ही से फ़ुरसत नहीं, इनके पास हमको बिना बुलाये ख़ुद जा कर तबलीग़ करना चाहिए।

फिर मालूम किया कि क्या बयान हुआ था? अर्ज़ किया कि आयत—

إِنَّ فِي خَلْقِ السَّمٰوٰتِ وَالْأَرْضِ وَاخْتِلَافِ اللَّيْلِ
وَالنَّهَارِ لَآيٰتٍ لِّأُولِي الْأَلْبَابِ الَّذِينَ يَذْكُرُونَ
اللّٰهَ قِيٰمًا وَّقُعُودًا وَّعَلٰى جُنُوبِهِمْ ......الآية

से यह साबित करके कि अक़्लमन्द वह लोग हैं जो दुनिया के निज़ाम में ग़ौर करके उसके पैदा करने वाले को पहचानते और हर वक़्त उसकी याद में रहते हैं। न वह जो ज़मीन व सूरज की गरदिश ही के चक्कर में रह जायें और पैदा करने वाले तक न पहुंचे। अल्लाह के ज़िक्र की ज़रूरत और उसकी हक़ीक़त ब्यान की, फिर तबलीग़ की ज़रूरत पर ज़ोर दिया था। फ़रमाया, यह मज़मून बहुत ऊँचा था, उस मजमे के मुनासिब न था, इस मज़मून के समझने वाले यहाँ पर जमा हैं, इसको यहां किसी वक़्त बयान करना चाहिये। उस मजमे के मुनासिब दूसरी आयत थी :

وَالَّذِينَ اجْتَنَبُوا الطَّاغُوتَ أَن يَعْبُدُوهَا وَأَنَابُوا إِلَى اللّٰهِ
لَهُمُ الْبُشْرٰى فَبَشِّرْ عِبَادِ الَّذِينَ يَسْتَمِعُونَ الْقَوْلَ
فَيَتَّبِعُونَ أَحْسَنَهُ أُولٰئِكَ الَّذِينَ هَدٰهُمُ اللّٰهُ
وَأُولٰئِكَ هُمْ أُولُو الْأَلْبَابِ

फ़रमाया, यह तबक़ा नीचे के दर्जे का है जिस

"هَدٰهُمُ اللّٰهُ"

पर लफ़्ज़ दलालत करता है। अर्ज़ किया सच है, फिर मौक़ा हुआ तो वहाँ इसी को बयान करूँगा।

[40]

एक बैठक में फ़रमाया-हमारी तबलीग़ का अस्ल मक़्सद शैतानी कामों से हटना और अल्लाह की तरफ़ वापस होना है। और यह बग़ैर कुरबानी के नहीं हो सकता। दीन में जान की भी कुरबानी है और माल की भी। सो तबलीग़ में जान की कुरबानी यह है कि अल्लाह के वास्ते अपने वतन को छोड़े और अल्लाह के कलिमे को फैलाय, दीन को फैलाय। माल की कुरबानी यह है कि तबलीग़ के सफ़र का ख़र्च खुद बरदाश्त करे और जो किसी मजबूरी की वजह से किसी ज़माने में खुद न निकल सके वह ख़ास तौर से उस ज़माने में दूसरों को तबलीग़ में निकलने का शौक़ दिलाये, औरों को भेजने की कोशिश करे।

اَلدَّالُّ عَلَى الْخَيْرِ كَفَاعِلِهٖ

इस तरह की बिना पर जितनों को यह भेजेगा उन सब की कोशिशों का सवाब इसको भी मिलेगा और अगर निकलने वालों की माली इम्दाद भी करेगा तो माल की कुरबानी का भी उसको सवाब मिलेगा। फिर इन जाने वालों को अपना मोहसिन[1] समझना चाहिये कि जो काम हमारे करने का था मगर हम किसी उज़्र की वजह से इस वक़्त नहीं कर सके तो यह हज़रात हमारे फ़र्ज़ को अदा कर रहे हैं। दीन यही है कि न निकलने वाले और मजबूर लोग, मुजाहिदीन को अपना मोहसिन समझें।

---

1. एहसान करने वाला

[41]

एक बार फ़रमाया-मौलाना हमारी तबलीग़ में इल्म व ज़िक्र की बड़ी अहमियत है। बग़ैर इल्म के न अमल हो सके न अमल की मारिफ़त, और बग़ैर इल्म के न अमल हो सके न अमल की मारिफ़त, और बग़ैर ज़िक्र के इल्म ज़ुलमत ही ज़ुलमत[1] है उसमें नूर नहीं हो सकता, मगर हमारे काम करने वालों में इसकी कमी है। मैंने अर्ज़ किया कि तबलीग़ ख़ुद बहुत अहम फ़रीज़ा है इसकी वजह से ज़िक्र में कमी होना वैसा ही है जैसा हज़रत सय्यद साहब बरेलवी क़द्दस सिर्रहू ने जिस वक़्त जिहाद की तय्यारी के लिये अपने ख़ादिमों को बजाय ज़िक्र व शग़ल के निशाना बाज़ी और घोड़े की सवारी में मशग़ूल कर दिया तो कुछ लोगों ने यह शिकायत की कि इस वक़्त पहले जैसे अनवार नहीं है, तो हज़रत सय्यद साहब ने फ़रमाया कि हाँ इस वक़्त ज़िक्र के अनवार नहीं हैं, जिहाद के अनवार हैं और इस वक़्त इसी की ज़रूरत है। फ़रमाया मगर मुझे इल्म और ज़िक्र की कमी का रंज है और यह कमी इस वास्ते है कि अब तक अहले इल्म और अहले ज़िक्र इसमें नहीं लगे हैं। अगर यह हज़रात आकर अपने हाथ में काम लेलें तो यह कमी भी पूरी हो जाय मगर उलमा और अहले ज़िक्र तो अभी तक इसमें बहुत कम आये हैं।

(खुलासह) अब तक जो जमाअतें तबलीग़ के लिये

---

1. तारीकी

रवाना की जाती हैं उनमें अहले इल्म और अहले निस्बत की कमी है जिसका हज़रत को रंज था, काश अहले इल्म और अहले निस्बत भी उन जमाअतों में शामिल होकर काम करें तो यह कमी पूरी हो जाय : अल्हम्दु लिल्लाह तबलीग़ के मरमज़ में अहले इल्म और अहले निस्बत मौजूद हैं मगर वह चन्द गिन्ती के आदमी हैं, अगर वह हर जमाअत के साथ जाया करें तो मरकज़ का काम कौन अंजाम दे।

[42]

एक ख़त में मौलाना सय्यद अबुल हसन अली नदवी का यह जुमला था कि मुसलमान दो ही क़िस्म के होते हैं, तीसरी कोई क़िस्म नहीं। या अल्लाह के रास्ते में खुद निकलने वाले हों या निकलने वालों की मदद करने वाले हों। फ़रमाया बहुत खूब समझे हैं। फिर फ़रमाया कि निकलने वालों की मदद में यह भी दाख़िल है कि लोगों को निकलने पर तय्यार करे, और उनको बतलाए कि तुम्हारे निकलने से फ़लां आलिम के बुख़ारी के दर्स या कुरआन के दर्स का हरज न होगा तो तुमको भी उसके दर्स का सवाब मिलेगा। इस क़िस्म की नियतों से लोगों को आगाह करना चाहिये और सवाब के रास्ते बतलाने चाहियें।

[43]

एक बार फ़रमाया-मौलाना हमारी तबलीग़ का हासिल यह है कि आम दीनदार मुसलमान अपने ऊपर वालों से दीन

को लें और अपने नीचे वालों को दें। मगर नीचे वालों को अपना मोहसिन (उपकारक) समझें। क्योंकि जितना हम कल्मे को पहुंचायेंगे फैलायेंगे, इससे खुद हमारा कल्मा भी कामिल और मुनव्वर (रोशन) होगा, और जितनों को हम नामाज़ी बनायेंगे इससे खुद हमारी नमाज़ भी कामिल (पूरी) होगी (तबलीग़ से फ़ायदा उठाने के लिये एक बड़ी शर्त यह है कि तबलीग़ करने वाले को उससे अपना कामिल होना मक़सूद हो, दूसरों के लिये अपने को हिदायत देने वाला न समझे क्योंकि हिदायत देने वाला अल्लाह तआला के सिवा कोई नहीं)।

[44]

एक बार फ़रमाया - हदीस में है

"مَنْ لَا يَرْحَمْ لَا يُرْحَمْ

اِرْحَمُوْا مَنْ فِي الْاَرْضِ يَرْحَمْكُمْ مَنْ فِي السَّمَاءِ"

जो (किसी पर) रहम नहीं करता उस पर रहम नहीं किया जाता। ज़मीन (पर रहने) वाले पर रहम करो आसमान वाला तुम पर रहम करेगा।

मगर अफ़सोस लोगों ने इस हदीस को भूक और फ़ाक़े वालों पर रहम के साथ मख़्सूस कर लिया है इस लिये उनको उस शख़्श पर तो रहम आता है जो भूका हो, प्यासा हो, नंगा हो, मगर मुसलमानों की दीन से महरूमी पर रहम नहीं

आता। गोया दुनिया के नुक़सान को नुक़सान समझा जाता, फिर हम पर आसमान वाला क्यों रहम करे, जब हमें मुसलमानों की दीनी हालत के बिगड़ने पर रहम नही। फ़रमाया–हमारी इस तबलीग़ की बुनयाद इसी रहम पर है, इस लिये यह काम शफ़्क़त के साथ अपने फ़र्ज़ को पूरा करेगा, लेकिन अगर यह मनशा (उद्देश्य) नहीं कुछ और मनशा है तो फिर वह घमन्ड व गुरूर में घिर जायेगा, जिससे फ़ायदे की उम्मीद नहीं। और जो शख़्स इस हदीस को सामने रख कर तबलीग़ करेगा उसमें ख़ुलूस भी होगा, उसकी नज़र अपने ऐबों पर भी होगी और दूसरों के ऐबों पर नज़र के साथ उनकी इस्लामी ख़ूबियों पर भी नज़र होगी, तो यह शख़्स अपने फ़ायदे का हामी न होगा बल्कि शिकायत करने वाला होगा। और इस तबलीग़ का गुर यही है कि नफ़्स की हिमायत (मदद) से अलग होकर नफ़्स की शिकायत का सबक़ हमेशा नज़र के सामने रहे।

[45]

एक बार फ़रमाया-मौलाना! अल्लाह के अहकाम की तलाश ज़रूरी है, बराबर तलाश में लगा रहना चाहिये। जैसे किसी काम में मशग़ूल होने से पहले सोचना चाहिये कि काम दो चीज़ों को चाहता है। एक उस काम पर तवज्जोह को जिसमें मशग़ूल होना चाहता है, दूसरे और कामों से उस वक़्त ग़फ़लत को, तो अब सोचना चाहिए कि जिन कामों में उस वक़्त ग़फ़लत होगी उनमें कोई उस काम से तो अहम

नहीं जिसमें मशगूलियत होगी, और यह बग़ैर तलाश के नहीं हो सकता।

[46]

एक बार फ़रमाया-नमाज़ से पहले कुछ देर नमाज़ का मुराक़बा (सोच विचार) करना चाहिये, जो नमाज़ बिला इन्तिज़ार के हो वह फुस फुसी है, तो नमाज़ से पहले नमाज़ को सोचना चाहिये।

फ़ायदाः– शरीअत ने इसी वास्ते फ़रायज़ से पहले सुन्नतों व नफ़िलों और इक़ामत वग़ैरा बताए हैं ताकि नमाज़ का मुराक़बा अच्छी तरह हो जाय फिर फ़र्ज़ अदा किया जाय। मगर न तो हम सुन्नतों व नवाफ़िल और इक़ामत वग़ैरा के इन फ़ायदों और मस्लेहतों को समझते हैं और न उनसे यह फ़ायदों और मस्लेहतों को समझते हैं और न उनसे यह फ़ायदे हासिल करते हैं इस लिये हमारे फ़राएज़ भी ख़राब अदा होते हैं।

اَللّٰھُمَّ اِنِّیْ اَسْئَلُکَ تَمَامَ الْوُضُوْءِ وَتَمَامَ الصَّلٰوۃِ وَتَمَامَ رِضْوَانِکَ

[47]

एक बार फ़रमाया—तबलीग़ में काम करने वालों को अपने दिल में वुसअ़त पैदा करना चाहिए, जो अल्लाह की रहमत की वुसअ़त पर नज़र करके पैदा होगी, उसके बाद तरबियत का एहतिमाम करना चाहिए।

[48]

एक बार फ़रमाया—हमारे सरदार रसूलल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम इस्लाम के शुरू के ज़माने में (जब दीन कमज़ोर था और दुनिया ताक़तवर थी) बेतलब उन लोगों के घर जाकर जिनके दिलों में दीन की तलब नहीं थी और उनकी मजलिसों में बे तलब पहुंच कर दावत देते थे, तलब का इन्तिज़ार नहीं करते थे। कुछ मक़ामात पर हज़रात सहाबा को ख़ुद से भेजा है कि फ़लां जगह तबलीग़ करो। इस वक़्त वही कमज़ोरी की हालत है तो अब हमको भी बे तलब लोगों के पास ख़ुद जाना चाहिये, मुलहिदों,[1] फ़ासिक़ो[2] के मजमें में पहुंचना चाहिये और कालमए-हक़ बुलन्द करना चाहिये (फिर ख़ुशकी ग़ालिब हो गई और बात न कर सके तो फ़रमाया) मौलाना तुम मेरे पास बहुत देर में पहुंचे, अब मैं तफ़सील से कुछ नहीं कह सकता, बस जो कुछ कह दिया उसी में ग़ौर करते रहिये।

[49]

एक बार फ़रमाया—मैं शुरू में इस तरह ज़िक्र की तालीम देता हूँ, हर नमाज़ के बाद तस्बीहे फ़ातिमा और तीसरा कलिमा– سُبْحَانَ اللّٰهِ وَالْحَمْدُ لِلّٰهِ وَ

لَآ اِلٰهَ اِلَّا اللّٰهُ وَاللّٰهُ اَكْبَرُ وَلَا حَوْلَ وَلَا قُوَّةَ اِلَّا بِاللّٰهِ

और सुबह व शाम सौ-सौ बार दरूद शरीफ़ व इस्तिग़फ़ार व क़ुरआन शरीफ की तिलावत सही क़िरअत के साथ और

1. दीन से फिर जाने वालों 2. गुनाहगारों

नफ़िलों में तहज्जुद की ताकीद और ज़िक्र वालों के पास जाना : इल्म बग़ैर ज़िक्र के ज़ुलमम है और ज़िक्र बग़ैर इल्म के बहुत से फ़ितनों का दरवाज़ा है।

[50]

एक बार फ़रमाया—ख़्वाब नबूव्वत का 46वाँ हिस्सा है। कुछ लोगों को ख़्वाब में ऐसी तरक़्क़ी होती है कि रियाज़त व मुजाहिदे से नहीं होती, क्योंकि उनको ख़्वाब में सही उलूम इल्क़ा[1] होते हैं जो नबूव्वत का हिस्सा है, फिर तरक़्क़ी क्यों न होगी (इल्म से मारिफ़त बढ़ती है और मारिफ़त से कुर्ब बढ़ता है) इसी लिये इरशाद है।

फिर फ़रमाया—आज–कल ख़्वाब में मुझ पर सही उलूम का इलक़ा होता है, इस लिये कोशिश करो कि मुझे नींद ज़्यादा आये (ख़ुशकी की वजह से नींद कम होने लगी थी तो मैंने हकीम साहब और डाक्टर साहब के मशवरे से सर में तेल मालिश कराई जिससे नींद में तरक़्क़ी हो गई) आपने फ़रमाया कि इस तबलीग़ का तरीक़ा भी मुझ पर ख़्वाब में ज़ाहिर हुआ। अल्लाह तआला का इरशाद है—

كُنْتُمْ خَيْرَ أُمَّةٍ أُخْرِجَتْ لِلنَّاسِ تَأْمُرُونَ بِالْمَعْرُوفِ وَتَنْهَوْنَ عَنِ الْمُنْكَرِ وَتُؤْمِنُونَ بِاللَّهِ

की तफ़सरी ख़्वाब में मिली कि तुम (यानी इस्लाम लाने वाली

1. यानी बताए जाते हैं।

उम्मत) अम्बिया अलैहिमुस्सलाम की तरह लोगों के वास्ते ज़ाहिर किये गये हो (और इस मतलब को उख़्रिजत से ताबीर करने में इस तरफ़ भी इशारा है कि एक जगह जम कर काम न होगा बल्कि दर बदर निकलने की ज़रूरत होगी) तुम्हारा काम भलाइयों का हुक्म देना और बुराइयों से रोकना है। इसके बाद "तू मिनू–न बिल्लाहि" फ़रमाकर यह बतलाया है कि इस भलाई के हुक्म से ख़ुद तुम्हारे ईमान को तरक़्क़ी होगी (वरना सिर्फ़ ईमान का हासिल करना तो "कुन्तुम ख़ै–र–उम्म–तिन" ही से मालूम हो चुका है) बस दूसरों की हिदायत का इरादा न करो, अपने नफ़े की नियत करो। और "उख़्रिजत लिन्नासि" में "अन्नास" से मुराद अरब नहीं बल्कि ग़ैर अरब हैं, क्योंकि अरब के बारे में तो "लस त अ–लैहिम बिमुसैतिरिन व–मा अन–त अलैहिम बि वकील" फ़रमाकर बतला दिया गया था कि उनके मुतअल्लिक़ हिदायत का इरादा हो चुका है, आप (स.) उनकी ज़्यादा फ़िक्र न करें। हाँ, "कुन्तुम ख़ै र उम्म तिन" के मुख़ातब अरब वाले हैं। और "अन्नास" से मुराद दूसरे लोग हैं जो अरब नहीं, चुनान्चे उसके बाद "व–लौ आ–म–न अहलुल–किताबि ल–का–न ख़ैरल लहुम" उसपर क़रीना है, और यहाँ "लका–न ख़ैरल–लहुम" फ़रमाया "लका–न ख़ैरल–लकुम" नहीं फ़रमाया, क्योंकि तबलीग़ करने वाले को तो तबलीग़ ही से अपने ईमान के पूरा होने का फ़ायदा हासिल हो जाता है, चाहे मुख़ातब क़ुबूल करे या न करे। अगर मुख़ातब तबलीग़ का असर क़ुबूल करके ईमान ले आये तो उसका अपना भी फ़ायदा होगा, तब्लीग़ करने वाले का फ़ायदा इसपर मौक़ूफ़ नहीं।

[51]

एक बार फ़रमाया—ज़कात का दर्जा हदये से कमतर है। यही वजह है कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम पर सदक़ा हराम था, हदया हराम न था। और अगर्चे ज़कात फ़र्ज है और हदया मुस्तहब है मगर बाज़ दफ़ा मुस्तहब का अज्र फ़र्ज़ से बढ़ जाता है जैसे पहले सलाम करना सुन्नत है और जवाब देना फर्ज़ है। पहले सलाम करना जवाब से बेहतर है। इसी तरह ज़कात गो फ़र्ज़ है मगर उसका नतीजा माल की पाकी है, और हदया गो मुस्तहब है मगर उसका नतीजा मुसलमान के दिल की ततईब[1] है। तो, नतीजे के लिहाज़ से यह सबसे बेहतर है क्योंकि माल की पाकी से मुसलमान के दिल की ततईब (यानि उसके दिल को ख़ुशी पहुंचाना) का दर्जा बढ़ा हुआ है, और ज़कात से भी अगर्चे मुसलमान ज़रूरतमन्द के दिल की ततईब हो जाती है मगर ज़कात का असिल मक़सद मुसलमान के दिल की ततईब नहीं है मगर साथ में वह भी हासिल हो जाती है और हदया से असिल मक़सद ही मुसलमान के दिल की ततईब है, फिर फ़रमाया कि ज़कात देने वालो पर उनकी तलाश ज़रूरी है जिन पर ख़र्च की जाये जैसे नमाज़ पढ़ने वाले पर पाक पानी का तलाश करना ज़रूरी है, और सही ज़कात का इस्तेमाल वह है जिसमें ज़कात का रूपया लेने से माल की लालच पैदा न हो। शरीअ़त का ज़कात फ़र्ज़ करने से यह हरगिज़ मक़सूद नहीं कि ग़रीब मुसलमानों में माल की हिर्स व लालच

1. दिल को ख़ुशी पहुंचाना।

पैदा हो जाय कि लोगों की ख़ैरात व ज़कात का इन्तिज़ार करते रहें। पस जो शख़्स अल्लाह पर भरोसा करके सब्र इख़्तियार करता है, जिस क़दर वह सब्र व भरोसा करेगा उसी क़दर माल वालों पर उसके सब्र के, बराबर उसकी इम्दाद ज़रूरी होती है। चुनान्चे इरशाद है—

لِلْفُقَرَاءِ الَّذِينَ أُحْصِرُوا فِي سَبِيلِ اللَّهِ لَا
يَسْتَطِيعُونَ ضَرْبًا فِي الْأَرْضِ يَحْسَبُهُمُ الْجَاهِلُ
أَغْنِيَاءَ مِنَ التَّعَفُّفِ.

तो ज़कात का सही इस्तेमाल वह लोग हैं जो अल्लाह के काम में लगे हुये हैं और सब्र से अल्लाह पर भरोसा किये हुये हैं, किसी से सवाल नहीं करते न किसी से लालच रखते हैं। मगर आज कल माल वाले पेशावर मांगने वालों को ज़कात देकर समझ लेते हैं कि ज़कात अदा हो गई, हालांकि वह तो पहली ज़कात को भी खो देती है। यही वजह है कि आज कल ज़कात अदा करने के बाद भी मालों में बरकत नहीं, हालांकि पक्का वादा है कि ज़कात से माल में बरकत होती है। पस जो लोग ज़कात के बाद अपने माल में बरकत न देखें उनको समझ लेना चाहिये कि ज़कात सही जगह नहीं दी गई और उन्होंने सही इस्तेमाल की तलाश नहीं की।

[52]

एक बार फ़रमाया कि—मुसलमानों को उलमा की ख़िदमत चार नियतों से करना चाहिये।

(1) इस्लाम की जिहत से। चुनान्चे सिर्फ़ इस्लाम की वजह से कोई मुसलमान किसी मुसलमान को देखने जाय यानि सिर्फ़ सलाह के लिये मुलाक़ात करे तो सत्तर हज़ार फ़रिश्ते उसके पांव तले अपने पर और बाज़ू बिछा देते हैं, तो जब हर मुसलमान की ज़ियारत में यह फ़ज़ीलत है तो उलमा की ज़ियारत में भी यह फ़ज़ीलत ज़रूरी है।

(2) यह कि उनके दिल व जिस्म नबूव्वत के उलूम को उठाये हुये हैं इस लिहाज़ से भी वह अदब के क़ाबिल और ख़िदमत के लायक़ है।

(3) यह कि वह हमारे दीनी कामों की निगरानी करने वाले हैं।

(4) उनकी ज़रूरियात की तलाश के लिये। क्योंकि अगर दूसरे मुसलमान उनकी दुनियावी ज़रूरतों की तलाश करके उन ज़रूरतों को पूरा करदें जिनको माल वाले पूरा कर सकते हैं तो उलमा अपनी ज़रूरतों में वक़्त लगाने से बच जायेंगे और वह वक़्त भी इल्म व दीन की ख़िदमत में ख़र्च करेंगे, तो माल वालों को उनके इन आमाल का सवाब मिलेगा।

मगर आम मुसलमानों को चाहिये कि भरोसे के लायक़ उलमा की तरबियत और निगरानी में उलमा की ख़िदमत का फ़र्ज़ अदा करें, क्योंकि उनको खुद इसका इल्म नहीं हो सकता कि कौन ज़्यादा इमदाद का मुस्तहिक है और कौन कम? और अगर किसी को खुद अपनी तलाश से इसका इल्म हो सके तो वह खुद तलाश करे।

[53]

फ़रमाया–मुसलमान दुआ से बहुत ग़ाफ़िल हैं। ओर जो करते भी हैं उनको दुआ की हक़ीक़त मालूम नहीं। मुसलमानों के सामने दुआ की हक़ीक़त को वाज़ेह[1] करना चाहिये। "दुआ की हक़ीक़त है अपनी ज़रूरतों को बुलन्द बारगाह में पेश करना, पस जितनी बुलन्द वह बारगाह है उतना ही दुआओं के वक़्त दिल को मुतवज्जेह करना और दुआ के अल्फ़ाज[2] को रोते व गिड़गिड़ाते और आंसू बहाते हुये अदा करना चाहिए और यक़ीन व भरोसे के साथ दुआ करना चाहिए कि ज़रूर क़ुबूल होगी, क्योंकि जिससे मांगा जा रहा है वह बहुत सख़ी[3] और करम करने वाला है, अपने बन्दों पर रहम करने वाला है। ज़मीन व आसमान के ख़ज़ाने सब उसी की क़ुदरत के क़ब्जे में हैं।"

[54]

एक बार फ़रमाया कि–जो जमाअतें सहारनपूर देवबन्द वग़ैरह तब्लीग़ के लिये जा रही हैं उनके साथ देहली के ताजिरों के ख़ुतूत[4] कर दिये जायें जिनमें भरे लहजे में उलमा हज़रात से अर्ज़ किया जाय कि यह जमाअतें लोगों में तब्लीग़ के लिये हाज़िर हो रही हैं आप हज़रात का वक़्त बहुत क़ीमती है अगर उसमें से कुछ वक़्त इस क़ाफ़िले की सरपरस्ती में दे सकें जिसमें आपका और तलबा का हरज न

1. स्पष्ट
2. शब्द
3. दानी
4. पत्रों

हो तो इसकी सरपरस्ती फ़रमायें, और तलबा को इस काम में अपनी निगरानी में साथ लें। तलबा को खुद से बग़ैर उस्तादों की निगरानी के इस काम में हिस्सा न लेना चाहिये। और क़ाफिला वालों की यानि तब्लीग़ करने वाली जमाअ़त को नसीहत की जाय कि अगर उलमा हज़रात तवज्जोह में कमी करें तो उनके दिलों में उलमा पर एतिराज़ न आने पाय, बल्कि यह समझ लें कि उलमा हमसे भी ज़्यादा अहम काम में मशगूल हैं, वह रातों को भी इल्म की ख़िदमत में मशगूल रहते हैं जबकि दूसरे आराम की नींद सोते हैं, और उनकी लापरवाही को अपनी कोताही पर महमूल करें कि हमने उनके पास आना जाना कम किया है इस लिए वह हम से ज़्यादा उन लोगों पर मुतवज्जेह हैं जो सालहा साल के लिए उनके पास आ पड़े हैं। फिर फ़रमाया कि:—

एक आम मुसलमान की तरफ़ से भी बिला वजह बद गुमानी हलाकत में डालने वाली है, और उलमा पर एतिराज़ तो बहुत सख़्त चीज है।

फिर फ़रमाया—हमारे तब्लीग के तरीक़े में मुसलमान की इ़ज़्ज़त और उलमा का एहतिराम बुन्यादी चीज़ है। हर मुसलमान की इस्लाम की वजह से इ़ज़्ज़त करना चाहिये, और उलमा का इल्मे दीन की वजह से बहुत एहतिराम करना चाहिये। फिर फ़रमाया कि :—

इल्म और ज़िक्र का काम अभी तक हमारे तब्लीग़ करने वालों के कब्ज़े में नहीं आया इसकी मुझे बड़ी फ़िक्र है, और

इसका तरीक़ा यही है कि उन लोगों को इल्म वालों और ज़िक्र वालों के पास भेजा जाय कि उनकी सरपरस्ती में तब्लीग़ भी करें और उनके इल्म व सोहबत से भी फ़ायदा उठायें।

[55]

एक दिन मैं आने वाले मेहमानों से बातचीत में ज़्यादा मशगूल रहा, मौलाना की ख़िदमत में ज़्यादा न बैठा, ज़ोहर के बाद ख़िदमत में हाज़िर हुआ तो फ़रमाया :–

"तुमको ज़्यादा मेरे पास रहना चाहिये।"

अर्ज़ किया कि आज आने वालों की ज़्यादा भीड़ थी, मैंने उनको अपने पास रखा और तब्लीग़ पर उनसे बातें करता रहा ताकि आपके पास ज़्यादा भीड़ न हो और आपको ज़्यादा बोलना न पड़े। फ़रमाया :–

"इसकी भी यही सूरत थी कि तुम मेरे पास रहते, मैं तुमसे दिल की बात करता रहता, तुम दूसरों को पहुंचा देते, इस तरह मेरे दिल का कांटा तो निकल जाता। तुम मेरे पास रहो मेरी बातों को सुनते रहो और दूसरों को पहुंचाओ ताकि मुझे किसी से ख़िताब न करना पड़े। कुछ लोग मुझसे कहते हैं कि हम तुझको बोलने न देंगे, मगर जब तक मेरे दिल का कांटा न निकल जाय मैं कैसे चुप हो जाऊँ। मैं हरगिज़ चुप न हूंगा, चाहे मर जाऊँ।

[56]

एक बार फ़रमाया—हज़रत मौलाना थानवी (रहमतुल्लाह अलैहि) ने बहुत बड़ा काम किया है। बस मेरा दिल यह चाहता है कि तालीम तो उनकी हो और तब्लीग़ का तरीक़ा मेरा हो कि इस तरह उनकी तालीम आम हो जायेगी। फिर फ़रमाया।

तक़रीर में शरई अहकाम की मस्लिहतों व अस्बाब को बयान न करो, बस तीन चीज़ों का ख़्याल रखने की लोगों को तालीम दी जाय। एक यह कि हर अमल में रज़ा–ए–हक़[1] का इरादा करें। और आख़िरत का यक़ीन रखें। जो अमल भी रज़ा–ए–हक़ के लिये और आख़िरत के यक़ीन के साथ हो कि यह आख़िरत में मुफ़ीद होगा। वहां इससे सवाब मिलेगा या अज़ाब दफ़ा[2] होगा। उसके साथ किसी ऐसे नफ़े का इरादा न हो जो मौत से पहले दुनिया में हासिल होने वाला है। वह तो रोंगे के तौर पर खुद ही हासिल हो जाते हैं, वह मक़सूद नहीं हैं, गो उनका हासिल होना यक़ीनी है और उसका यक़ीन रखना भी ज़रूरी है मगर अमल से उनका इरादा न किया जाय। फिर फ़रमाया, हां जिस जगह इसकी ज़रूरत हो वहां असरार व मासालेह[3] के बयान में कोई हरज भी नहीं, मगर हर जगह उनको बयान न किया जाय।

---

1. अल्लाह की रज़ा व ख़ुशी   2. दूर
3. भेदों व मसलिहतों

[57]

एक बार फ़रमाया-हज़रत मौलाना थानवी (रहमतुल्लाह अलैहि) के लोगों की मुझे बहुत क़द्र है क्योंकि वह क़रीबी ज़माने के हैं, इसी वजह से तुम मेरी बातें जल्दी समझ जाते हो कि मौलाना की बातें सुन चुके हो और ताज़ा सुनी हुई हैं। फिर फ़रमाया, तुम्हारी वजह से मेरे काम में बहुत बरकत हुई, मेरा बहुत जी ख़ुश हुआ, फिर बहुत दुआऐं दीं और फ़रमाया तुम ख़ुद भी रो–रो कर इस नेमत का शुक्र करो।

اَللّٰھُمَّ مَا اَصْبَحَتْ بِیْ اَوْ اَمْسَتْ بِیْ مِنْ نِعْمَۃٍ
اَوْ بِاَحَدٍ مِّنْ خَلْقِكَ فَمِنْكَ وَحْدَكَ لَا شَرِیْكَ لَكَ
لَكَ الْحَمْدُ وَلَكَ الشُّكْرُ

[58]

फ़रमाया-तब्लीग़ के काम के लिये सय्यदों को ज़्यादा कोशिश के साथ उठाया जाय और आगे बढ़ाया जाय। हदीस–

"ترکت فیکم ثقلین کتاب اللہ وعترتی اہل بیتی"

का यही तक़ाज़ा है। इन बुज़ुर्गों से दीन का काम पहले भी बहुत हुआ है और आइन्दा भी इन्ही से ज़्यादा उम्मीद है।

[59]

एक दिन फ़रमाया-किसी मुसलमान को किसी से

अल्लाह के लिये मोहब्बत हो या उससे किसी मुसलमान को अल्लाह के लिये सच्ची मोहब्बत हो तो यह मोहब्बत और नेक ख़्याल ही आख़िरत के लिये ज़ख़ीरा है। मुसलमानों को जो मुझसे मोहब्बत है उससे कुछ उम्मीद होती है कि इनशाअल्लाह वहां भी परदा पोशी हो जायेगी।

फिर फ़रमाया-अपने ख़ाली हाथ होने का यक़ीन ही कामयाबी है, कोई भी अपने अमल से कामयाब न होगा, सिर्फ़ अल्लाह के फ़ज़्ल से कामयाब होगा। रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम फ़रमाते हैं।

لن يدخل الجنة احد بعمله قالوا ولا انت
يا رسول الله قال ولا انا الا ان يتغمدنى الله
برحمته ।

यह हदीस पढ़ कर मौलाना ख़ुद भी रोये और दूसरों को भी रुलाया।

[60]

एक बार फ़रमाया-मौलाना! उलमा इस तरफ़ नहीं आते हैं क्या करूँ ? हाय अल्लाह मैं क्या करू? अंर्ज़ किया सब आ जायेंगे आप दुआ करें। फ़रमाया मैं तो दुआ भी नहीं कर सकता, तुम ही दुआ करो, फिर यह अशआर पढ़े :—

استغفر الله من قول بلا عمل   لقد نسبت به نسلا لذى عقم
ظلمت سنة من احى الظلام الى   ان اشتكت قدماه الضر من ورم

इसके बाद आपकी आंखों में आंसू आ गये और फ़रमाया कसीदा बुर्दह हमारे यहाँ कोर्स में दाख़िल है मगर अदब के लिहाज़ से नहीं बल्कि दिल भर आने और नबी की मोहब्बत में ज़ियादती करने के लिये दाख़िल किया गया है।

[61]

फ़रमाया-इस्लाम में एक तो वुसअत का दर्जा है, यह वुसअत तो इतनी है कि मुसलमान के घर पैदा हो जाना, दारुल इस्लाम में पैदा होना, ख़ैर अबवैन का ताबे होना[1] भी मुसलमान शुमार किये जाने के लिये काफ़ी है, और इस वुसअत के साथ मख़लूक़ को इसमें दाख़िल करने के बाद फिर जहाँ तक हो सके उसको निकलने भी नहीं देते कि अगर किसी की बात में निन्नान्वे कुफ्र की वजहें मौजूद हों और एक वजह इस्लाम की हो तो उसको मुसलमान ही कहा जायेगा। मगर यह हक़ीक़ी इस्लाम नहीं बल्कि रसमी है। हक़ीक़ी इस्लाम यह है कि मुसलमान में ला इला ह इलल्लाहु की हक़ीक़त पाई जाय। और उसकी हक़ीक़त यह है कि उसका भरोसा करने के बाद अल्लाह तआला की बन्दगी का पक्का इरादा दिल में पैदा हो, माबूद को राज़ी करने की फ़िक्र दिल को लग जाय, हर वक़्त यह धुन रहे कि हाय वह मुझसे राज़ी है या नहीं ?

---

1. यानी नेक वालिदैन के अनुसार चलना।

[62]

फ़रमाया-दो चीजों की मुझे बड़ी फ़िक्र है, उनका एहतिमाम किया जाये, एक ज़िक्र का कि अपनी जमाअ़त में इसकी कमी पा रहा हूं उनको ज़िक्र बतलाया जाय, दूसरे माल वालों को ज़कात का सही मसरफ़[1] समझाया जाय। उनकी ज़कातें अकसर बरबाद जा रही है, सही जगह ख़र्च नहीं होतीं। मैंने चालीस आदमियों के नाम लिखवाये हैं जो लालची और हरीस नहीं, अगर उनको ज़कात दी जाय तो उनमें हिर्स व लालच पैदा न होगी और वह अल्लाह के भरोसे पर तब्लीग़ के काम में लगे हुये हैं, उनकी इमदाद बहुत ज़रूरी है। माल वालों को ऐसे लोगों की तलाश करना चाहिये कि किसको कितनी ज़रूत है। यह जो पेशावर मांगने वालों को और आम चन्दा मांगने वालों को ज़कात देते हैं अकसर इससे उनकी ज़कातें मसरफ़ में नहीं ख़र्च हुवा करतीं।

[63]

फ़रमाया-इल्म से अमल पैदा होना चाहिये, और अमल से ज़िक्र पैदा होना चाहिये, जभी इल्म है, और अगर इल्म से अमल पैदा न हो तो सरासर, ज़ुल्म है। और अमल से अल्लाह की याद दिल में न पैदा हुई तो फुसफुसा है और ज़िक्र बिला इल्म भी फ़ितना है।

---

1. ख़र्च करने की सही जगह।

[64]

फ़रमाया-लोगों को हदया, सदक़ा और क़र्ज़ के फ़ज़ायल सहाबा के वाक़ेआत से बतलाना चाहिये। सहाबा मज़दूरी कर कर के सदक़ा करते थे। उनमें सिर्फ़ मालदार ही सदक़ा नहीं करते थे, ग़रीब भी मज़दूरी करके कुछ न कुछ सदक़ा किया करते थे क्योंकि सदक़ा के फ़ज़ायल उनकी नज़र में थे, और जब सदक़ा का यह दर्जा है तो हदया तो उससे भी अफ़ज़ल है। इसी तरह क़र्ज़ देने के भी बहुत फ़ज़ाएल हैं, जैसे जिस वक़्त क़र्ज़ की मुद्दत पूरी हो जाय उसके बाद तंगदस्त क़र्ज़ लेने वाले को अगर मोहलत दी गई, तक़ाज़ा न किया गया तो हर दिन सदक़े का सवाब मिलता है।

[65]

फ़रमाया-मुझे अपने ऊपर इस्तिदराज[1] का डर है। मैंने अर्ज़ किया कि यह डर ऐन ईमान है (इमाम हसन बसरी रहमतुल्लाह अलैह का इरशाद है कि अपने ऊपर निफ़ाक़ का डर मोमिन ही को होता है) मगर जवानी में डर का ज़्यादा होना अच्छा है और बुढ़ापे में अल्लाह से नेक गुमान और उम्मीद का ज़्यादा होना अच्छा है। फ़रमाया, हाँ सही है।

---

1. ढील देना

क़िस्त नम्बर-5

हज़रत मौलाना रहमतुल्लाह अलैह ने इन्तिक़ाल से ठीक एक साल पहले रजब सन 1362 हिजरी में लखनऊ और कानपुर का एक तबलीग़ी सफ़र फ़रमाया था, यह आजिज़[1] इस सफ़र में साथ था। इस क़िस्त के मलफ़ूज़ात उसी सफ़र के हैं।

[66]

फ़रमाया-हमारे इस तब्लीग़ी काम में हिस्सा लेने वालों को चाहिये कि क़ुरआन व हदीस में दीन की दावत व तब्लीग़ पर अज्र व सवाब के जो वादे किये गये हैं और जिन इनआमात की ख़ुशख़बरी सुनाई है उनपर पूरा यक़ीन करते हुये उनही की चाहत व उम्मीद में इस काम में लगें—और इसका भी ध्यान किया करें कि हमारी इन हक़ीर कोशिशों के ज़रीये अल्लाह पाक जितनों को दीन पर लगा देंगे और फिर इस सिलसिले से जो लोग क़यामत तक दीन पर पड़ेंगे और वह जो भी नेक अ़मल करेंगे तो उनके अच्छे आमाल का जितना सवाब उनको मिलेगा इनशाअल्लाह तआला उन

1. बेहैसियत

तमाम सवाबों के मजमूए की बराबर अल्लाह पाक अपने वादे के मुताबिक़ हमको भी अता फ़रमायेंगे, बशर्ते कि हमारी नियत ख़ालिस और हमारा काम क़ाबिले क़ुबूल हो।

[67]

फ़रमाया-लोगों को जब इस तब्लीग़ी काम के लिये तय्यार करना हो तो अच्छी तरह इस काम में लगने के फ़ायदे और आख़िरत में मिलने वाला उसका अज्र व सवाब भी ख़ूब तफ़सील से उनको बतलाओ (और इस तरह बयान करने की कोशिश की करो कि थोड़ी देर के लिये तो जन्नत का कुछ समां उनकी आंखों के सामने आजाय, जैसा कि क़ुरआन मजीद का तरीक़ा है) इसके बाद इनशाअल्लाह उनके लिये यह आसान होगा कि इस काम में मशग़ूली की वजह से थोड़े बहुत दुनिया के कामों के हरज और नुक़सान का जो डर उन्हें होगा वह उसको नज़र अन्दाज़ कर सकेंगे।

[68]

फ़रमाया-तब्लीग़ी गश्त के वक़्त में और ख़ास तौर से किसी बयान के वक़्त भी ज़िक्र व फ़िक्र में मशग़ूली के लिये जमाअत को जो ताकीद की जाती हैं तो उसका ख़ास मक़सद यह है कि जिस वक़्त एक हक़ीक़त किसी को समझाने, और मनवाने की कोशिश की जाय तो बहुत से दिलों में उस वक़्त इस हक़ीक़त की तसदीक़ और इसका यक़ीन व भरोसा हो,

इसका असर दूसरे के दिल पर पड़ता है। अल्लाह तआला ने इनसान के दिलों में बड़ी ताक़ते रखी हैं लोग उनसे वाक़िफ़ नहीं हैं।

[69]

फ़रमाया-अल्लाह का ज़िक्र शैतानों के शर से बचने के लिये क़िला और मज़बूत पनाहगाह है। लिहाज़ा जिस क़दर ग़लत और बुरे माहौल में तब्लीग़ के लिये जाया जाय जिन्नातों व इनसानों के शैतानों के बुरे असरात से अपनी हिफ़ाज़त के लिये उसी क़दर ज़्यादा अल्लाह के ज़िक्र का एहतिमाम किया जाय।

[70]

एक दीनी मदरसे के तलबा की एक जमाअत से ख़िताब की शुरुआत इस सवाल से की :–

"बतलाओ तुम कौन हो?" (फिर ख़ुद ही फ़रमाया)

"तुम ख़ुदा और रसूल के मेहमान हो, मेहमान अगर मेज़बान को तकलीफ़ पहुंचाय तो उसकी तकलीफ़ दूसरों की तकलीफ़ से बहुत ज़्यादा तकलीफ़ देह होती है, पस अगर तुम "तालिबे इल्म" होकर ख़ुदा और रसूल की रज़ा के काम न करो और ग़लत राहों पर चलो तो समझ लो कि तुम अल्लाह व रसूल के सताने वाले उनके मेहमान हो।"

[71]

इन्ही तलबा से ख़िताब करते हुये फ़रमाया :–

"देखो, शैतान बड़ा चालाक ओर मक्कार है, वह ताककर दौलत पर गिरता है, आप लोग दीन का इल्म सीखने के लिये घरों से निकल पड़ें तो शैतान इससे तो ना उम्मीद हो गया कि आप निरे जाहिल रहें 'इस लिये उसने जाहिल रखने की कोशिश छोड़कर अब यह तै कर लिया कि उनको पढ़ने दो मगर काम में अपने लगाने की कोशिश करो–मेरी यह तहरीक शैतान की इस कोशिश के मुक़ाबले "जर्रे सक़ील" (भारी बोझ उठाने का आला) है, जिसका मनशा यह है कि ख़ुदा के बन्दों को शैतान की राह से उठाकर अल्लाह की राह पर डाल दूं, और अल्लाह के काम में लगा दूँ, बताओ क्या फ़ैसला है?"

[72]

इसी ख़िताब के सिलसिले में फ़रमाया :–

"जिन लोगों की ख़िदमत के हुक़ूक़ तुम पर हैं और जिनकी इताअत करना तुम्हारे लिये ज़रूरी है उनकी ख़िदमत व आराम का इन्तिज़ाम करके और उनको मुतमइन करके इस काम में निकलो और अपना रवैय्या ऐसा रखो कि तुम्हारे इल्म व सलाह के शौक़ में तरक़्क़ी देख कर तुम्हारे सरपरस्त इस काम में तुम्हारे लगने से न सिर्फ़ यह कि मुतमइन हों बल्कि चाहने वाले और पसन्द करने वाले हो जायें।

[73]

फ़रमाया-दीन के कामों में अस्ल मतलब व मक़सद तो होना चाहिये सिर्फ़ अल्लाह की रज़ा और आख़िरत के अज्र, और दुनिया में जिन इनआमात व बरकात का वादा किया गया है, जैसे चैन की और इज़्ज़त की ज़िन्दगी, या जैसे इस्तिख़्लाफ़ और तमकीन फ़िल अर्ज़[1] सो यह मतलूब नहीं बल्कि मौऊद[2] है, यानी हमको जो कुछ करना है वह करना तो चाहिये सिर्फ़ अल्लाह की रज़ा और आख़िरत की कामयाबी के लिये, मगर यक़ीन रखना चाहिये अल्लाह के उन वादों पर भी, (बल्कि उनके लिये दुआऐं भी करनी चाहियें, मगर उनको अपनी इबादत व इताअत का अस्ल मक़सद नहीं बनाना चाहि

मौऊद और मतलूब के इस फ़र्क़ को आप लोग इस मिसाल से शायद अच्छी तरह समझ सकेंगे कि निकाह व शादी से मक़सूद तो बीवी का हासिल करना और उससे फ़ायदा हासिल करना होता है मगर उसके साथ आता है जहेज़ वग़ैरह भी जो गोया उरफ़न मौऊद होता है लेकिन ऐसा बेवक़ूफ़ दुनिया में शायद ही कोई हो जो शादी ही सिर्फ़ जहेज़ हासिल करने के लिये करे—और अगर फ़र्ज़ कीजिये कोई ऐसा करे और बीवी को मालूम हो जाय कि उसने शादी मेरे लिये नहीं की बल्कि मेरे साथ आने वाले जहेज़ के लिये की है तो सोचो कि बीवी के दिल में उसके लिये कितनी जगह रहेगी।

1. कार्यवाहक बनाना 2. जिनका वादा किया गया है।

[74]

फ़रमाया-इनसान का फ़र्क़ अपने अलावा दूसरी मख़लूक़ात से ज़बान की वजह से है। होना तो चाहिये यह फ़र्क़ भलाई ही में लेकिन होता है यह बुराई में भी, यानी जिस तरह इनसान ज़बान के सही इस्तेमाल और उससे अल्लाह का और दीन का काम लेने की वजह से भलाई व नेकी में फ़रिश्तों से भी बढ़ जाता है, इसी तरह इस ज़बान को बेजा इस्तेमाल करने से सुवर और कुत्ते जैसे जानवरों से भी बदतर हो जाता है। हदीस में है कि

وهل يكب الناس على مناخرهم الا حصائد السنتهم

लोगों को उनकी नाक के बल घसीटने वाली जहन्नम की तरफ़ ज़बान से ज़्यादा कोई चीज़ नहीं।

[75]

चन्द रोज़ पहले हकीमुल उम्मत हज़रत थानवी रहमतुल्लाह अलैह का विसाल[1] हुआ था, हज़रत से बैअत का तअल्लुक़ रखने वाले एक साहब ज़ियारत के लिये तशरीफ़ लाये। राक़िमे सुतूर[2] ने उनका तआरुफ़ कराया इसपर हज़रत ने फ़रमाया :-

"जिन हज़रात का मोहब्बत व तअल्लुक़ का हल्क़ा इतना फैला हुआ हो जितना कि हमारे हज़रत थानवी रहमतुल्लाह अलैह का था, चाहिये कि उनकी आम ताज़ियत की फ़िक्र की जाय, मेरा जी चाहता है कि इस वक़्त हज़रत

1. इन्तिक़ाल 2. लेखक

के तमाम तअल्लुक़ रखने वालों की ताज़ियत की जाय और ख़ास तौर से यह मज़मून आज–कल फैलाया जाय कि हज़रत रहमतुल्लाह अलैह से तअल्लुक़ बढ़ाने, हज़रत की बरकात से फ़ायदा हासिल करने और साथ ही हज़रत के दरजात की तरक़्क़ी की कोशिशों में हिस्सा लेने और हज़रत की रुह की मसर्रतों को बढ़ाने का सबसे बड़ा और सबसे मज़बूत ज़रीआ यह है कि हज़रत की सच्ची तअलीमात और हिदायत पर मज़बूती से क़ायम रहा जाय और उनको ज़्यादह से ज़्यादह फैलाने की कोशिश की जाय। जितना जितना हज़रत की हिदायत पर कोई चलेगा उतना ही इस हदीस

من دعا الى حسنة فله اجرها واجر من عملها

के क़ायदे के मुताबिक़ हज़रत रहमतुल्लाह अलैह की नेकियों और उनके बलन्द दरजात में तरक़्क़ी होगी।"

फिर फ़रमाया कि :–

"यह ईसाले सवाब का सबसे बेहतर तरीक़ा है।"

[76]

फ़रमाया-अगर कोई शख़्स अपने को तब्लीग़ का अहल नहीं समझता है तो उसको बैठा रहना हरगिज़ नहीं चाहिये, बल्कि उसको तो काम में लगने और दूसरों को उठाने की और ज़्यादा कोशिश करना चाहिये। बअज़ दफ़अ ऐसा होता है कि कोई बड़ी भलाई का काम कुछ ना अहलों के सिलसिले से किसी अहल तक पहुंच जाता है और फिर वह फलता फूलता है और फिर उसका अज्र बक़ाएदा

من دعى الى حسنة فله اجرها واجر من عمل بها

ومن سن في الاسلام سنة حسنة فله اجرها واجر

उन नाअहलों को भी पूरा पहूंच जाता है जो इस काम के उस अहल तक पहुंचने का ज़रीआ बने। पस जो नाअहल हो उसको तो इस काम में और ज्यादा जोर से लगना जरूरी है–मैं भी अपने को चूँकि नाअहल समझता हूं इस लिये इसमें मसरूफ़ हूं कि शायद अल्लाह मेरी इस कोशिश से काम को उसके किसी अहल तक पहुंचादे और इस काम का जो बड़ा अज्र अल्लाह पाक के यहाँ हो वह भी मुझे अता फ़रमा दिया जाय।

[77]

फ़रमाया-हज़रत अबू सईद ख़ुदरी रज़ियल्लाह अन्हू की मशहूर हदीस

من رای منکم منکرا فلیغیرہ بیدہ فان لم یستطع فبلسانہ فان لم یستطع فبقلبہ

के आख़िरी हिस्से फ बिक़ल्बिहि का एक दरज़ा और उसकी एक सूरत यह भी है मुनकर[1] के इज़ाले[2] के लिये दिल वाले अपनी दिली ताक़तों को इस्तेमाल करें, यानी हिम्मत व तबज्जोह को काम में लायें।

फिर इसी सिलसिले में फ़रमाया-इमाम अब्दुल वहाव शेरानी ने कुतबियत[3] दर्जा हासिल करने की एक तदबीर

---

1. बुरे काम 2. खत्म करने के लिये 3. बुजुर्गी का दर्जा

लिखी है, जिसका हासिल यह है कि अल्लाह की ज़मीन पर जहां–जहां जो–जो नेकियां मिटी हुई हैं और मुर्दा हो गई हैं उनका ख़्याल करे, फिर दिल में उनके मिटने का एक दर्द महसूस करे और रोते व गिड़गिड़ाते हुये उनके ज़िन्दा और जारी करने के लिये अल्लाह तआला से दुआ करे और अपनी दिल की ताक़त को भी उनके ज़िन्दा करने के लिये इस्तेमाल करे–इसी तरह जहां–जहां जो–जो बुराइयां फैली हुई हैं उनका भी ध्यान करे और फिर उनके बढ़ जाने की वजह से अपने अन्दर एक दर्द और दुख महसूस करे फिर गिड़गिड़ाते हुए अल्लाह तआला से उनको मिटा देने के लिये दुआ करे और अपनी हिम्मत व तवज्जोह को भी उनके इस्तीसाल[1] के लिये इस्तेमाल करे।

इमाम अब्दुल वहाब शेरानी ने लिखा है कि "जो शख़्स ऐसा करता रहेगा इनशाअल्लाह वह ज़माने का क़ुतुब होगा।"

[78]

फ़रमाया-हर मौक़े का असली और सबसे बड़ा ज़िक्र ख़ास उस मौक़े के मुतअल्लिक़ खुदा के अहकाम की रिआयत है।

"لَا تُلْهِكُمْ أَمْوَالُكُمْ وَلَا أَوْلَادُكُمْ عَنْ ذِكْرِ اللّٰهِ"

पस जो शख़्स औलाद के साथ बरतावे में और ख़रीद व फ़रोख़्त जैसे मआमलात में ख़ुदा के अहकाम की इताअत और अल्लाह के हुदूद की रिआयत करता है वह इन कामों में मशगूल होते हुये भी अल्लाह का ज़िक्र करने वाला है।

1. जड़ से उखाड़ फेंकना

[79]

फ़रमाया-जन्नत तवाज़ो व इन्किसारी करने वालों ही के लिये है। इन्सान में अगर किब्र[1] का कोई हिस्सा है तो पहले उसको जहन्नम में डाल कर फूँका जायगा। जब ख़ालिस तवाज़ो रह जायगा तब वह जन्नत में भेजा जायगा, बहरहाल किब्र के साथ कोई आदमी जन्नत में नहीं जायगा।

[80]

फ़रमाया-हमारे बुज़ुर्गों ने ग़ैर सलिकीन[2] को सूफ़िया की किताबों के पढ़ने से मना किया है। हां जो सालिक किसी तहक़ीक़ शुदा शेख़ के ज़ेरे तरबियत हो वह पढ़े तो हरज नहीं।

[81]

मौलाना मरहूम ने इसी लखनऊ के सफ़र में एक मशहूर आलिमे दीन को भी जमाअत के साथ लखनऊ तशरीफ़ लाने की दावत दिलवाई थी, वह साहब तशरीफ़ ले आये। मौलाना ने उनसे एक मौक़े पर फ़रमाया।

''हज़रत ! मैंने आपको वाज़ कहलवाने के लिये तकलीफ़ नहीं दी है। हमारे इस काम में वाज़ व तक़रीर तो सिर्फ़ ज़िमनी चीज़ है। आप जैसे हज़रात को सफ़र की तकलीफ़ मैं सिर्फ़ इस लिये देता हूँ कि अपनी जगह पर और

1. अपने को बड़ा समझना
2. बन्दगी व रियाज़त के मार्ग पर न चलने वाले

अपने कामों में रहते हुये तो मेरे इस काम को समझने और इसपर ग़ौर करने के लिये आप हज़रात को मोहलत नहीं मिलती लेकिन जब सफ़र की वजह से आप अपने कामों और अपने माहौल से अलग कर लिये जाते हैं तो फिर इतमिनान से मेरी सुन भी सकते हैं और जमाअत के काम को भी अपनी आंख से देख सकते हैं और उसके बारे में ग़ौर व फ़िक्र भी फ़रमा सकते हैं।

[82]

फ़रमाया-लोगों को शौक़ दिलाओ कि वह दीन सीखने सिखाने औंर दीन को फैलाने के वास्ते अपने ख़र्च पर घरों से निकलें। अगर उनमें इसकी बिलकुल ताक़त न हो या वह इतनी कुरबानी पर तय्यार न हों तो फिर जहां तक हो सके उनहीं के माहौल से इसका इन्तिज़ाम करो। और अगर यह भी न हो सके तो फिर दूसरी जगह से ही इन्तिज़ाम करदो, लेकिन यह बहर हाल ख़्याल रहे कि उनमें इशराफ़े नफ़्स पैदा न हो जाय। यह चीज़ (यानी अपनी ज़रूरतों में बजाय अल्लाह के बन्दों पर नज़र होना जिसका नाम इशराफ़ है) ईमान की जड़ों को खोखला कर देने वाली है।

और उन निकलने वालों को यह भी अच्छी तरह समझा दिया जाय कि इस राह की तकलीफ़ों, भूक, प्यास वग़ैरह को अल्लाह की रहमत समझें, इस रास्ते में यह तकलीफ़ें तो नबियों और सिद्दीक़ीन और मुक़र्रबीन की ग़िज़ाऐं हैं।

[83]

फ़रमाया-दोस्तो! अभी काम का वक़्त बाक़ी है। जल्दी ही दीन के लिये दो ज़बरदस्त ख़तरे पेश आयेंगे। एक तहरीक शुद्धी की तरह कुफ़्र की तब्लीग़ी कोशिश, जो जाहिल अवाम में होगी। और दूसरा ख़तरा है दीने हक़ से फिर जाना और ख़ुदा को न मानना, जो मग़रबी हुकूमत व सियासत के साथ साथ आ रहा है। यह दोनों गुमराहियां सैलाब की तरह आयेंगी, जो कुछ करना है उनके आने से पहले पहले करलो।

[84]

फ़रमाया-दीन की आम तौर से तालीम व तरबियत का जो तरीक़ा हम अपनी इस तहरीक के ज़रीये ज़ारी करना चाहते हैं सिर्फ़ वही तरीक़ा हुज़ूर सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम के ज़माने में जारी था और उसी तर्ज़ से वहां आम तौर पर दीन सीखा और सिखाया जाता था, बाद में जो और तरीक़े इस सिलसिले में ईजाद हुये जैसे किताबें लिखना और किताबी तालीम वग़ैरह, सो उनको वक़्त की ज़रूरत ने पैदा किया, मगर अब लोगों ने सिर्फ़ उसी को असल समझ लिया है और हुज़ूर सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम के ज़माने के तरीक़े को बिल्कुल भुला दिया गया है, हालांकि अस्ल तरीक़ा वही है और उमूमी पैमाने पर तालीम व तरबियत सिर्फ़ उसी तरीक़े से दी जा सकती है।

[85]

फ़रमाया-मुझे जब भी मेवात ज़ाना होता है तो हमेशा अहले ख़ैर और ज़िक्र के मजमे के साथ जाता हूं, फिर भी आम लोगों से मिलने जुलने से दिल की हालत इस क़द्र बदल जाती है कि जब तक एतिकाफ़ के ज़रीए उसको ग़ुस्ल न दूं या कुछ रोज़ के लिये "सहारनपुर" या "रायपुर" के ख़ास मजमे और ख़ास माहौल में जाकर न रहूं दिल अपनी हालत पर नहीं आता।

दूसरों से भी कभी फ़रमाया करते थे कि—दीन के काम करने वालों को चाहिये कि गश्त और चलत फिरत के क़ुदरती असरात को तनहाई के ज़िक्र व फ़िक्र के ज़रीये धोया करें।

[86]

फ़रमाया-हमारी तब्लीग़ में काम करने वालों को तीन तबक़ो में तीन ही मक़सदों के लिये ख़ास तौर से जाना चाहिये।

(1) उलमा और सुलहा की ख़िदमत में दीन सीखने और दीने के अच्छे असरात लेने के लिये।

(2) अपने से कम दर्जे के लोगों में दीनी बातों को फैलाने के ज़रिये अपने ईमान की तकमील और अपने दीन को पुख़्ता करने के लिये।

(3) मुख़्तलिफ़ गिरोहों में उनकी अलग अलग अच्छाईया हासिल करने के लिये।

[87]

एक दिन दुआ करते हुये फ़रमाया :–

"ऐ अल्लाह, काफ़िरों पर तेरे बन्दे होने की हैसियत से जो मेहरबानी और जो रहम हम में होना चाहिये और उसकी वजह से उनके जो हुक़ूक़ हम पर लागू होते हैं उनकी अदायगी की तौफ़ीक़ के साथ उनके कुफ़्र से हमारे दिल में पूरी पूरी नफ़रत और नापसन्दी पैदा कर।"

[88]

फ़रमाया-अहले दीन (उलमा व सुलहा) को इस काम (तब्लीग़ी व इस्लाही कोशिश) में शरीके करने और उनको राज़ी व मुतमइन करने की फ़िक्र ज़्यादा से ज़्यादा करनी चाहिये और जहाँ उनका इख़्तिलाफ़ और नागवारी मालूम हो वहां उनको माज़ूर क़रार देने के लिये उनके हक़ में अच्छी ताबील करनी चाहिये और उनकी ख़िदमतों में दीनी फ़ायदा और बरकात के हासिल करने की नियत से हाज़िर होते रहना चाहिये।

[89]

फ़रमाया–नफ़्से इस्लाम की भी अल्लाह के यहां क़द्र व क़ीमत है अगर्चे वह गुनहगारी के साथ मिला हुआ हो, इसी वास्ते इन्तिहाई गुनहगार मोमिन भी एक न एक वक़्त बख़्श दिया जायेगा, बस हमें चाहिये कि जिसमें इस्लाम अदना[1] दर्जे में भी मौजूद हो उसकी भी इस्लाम की निस्बत की क़द्र करें

1. सब से कम

और उसको अपना दीनी भाई समझें और उसी हैसियत से उससे मामला करें और उसके अन्दर जो गुनाह मौजूद हो उसके लिये अपने आपको भी ज़िम्मेदार समझें कि हमारी ग़फ़लत का भी इसमें हाथ है और दीन की कोशिश न करने ही का यह नतीजा है।

[90]

फ़रमाया—हमारा काम दीन का बुनयादी काम है और हमारी तहरीक हक़ीक़त में ईमान की तहरीक है। आज कल आम तौर से जो इजतिमाई काम होते हैं उनके करने वाले ईमान की बुनयाद को क़ायम फ़र्ज करके उम्मत की ऊपर की तामीर करते हैं और ऊपर के दर्जे की ज़रूरीयात की फ़िक्र करते हैं। और हमारे नज़दीक उम्मत की पहली ज़रूरत यही है कि उनके दिलों में पहले सही ईमान की रोशनी पहुंच जाय।

[91]

फ़रमाया—हमारे नज़दीक इस वक़्त उम्मत की अस्ल बीमारी दीन की तलब व क़द्र से उनके दिलों का ख़ाली होना है। अगर दीन की फ़िक्र व तलब उनके अन्दर पैदा हो जाय और दीन की अहम्मियत का शुऊर व एहसास उनके अन्दर ज़िन्दा हो जाय तो उनकी इस्लामियत देखते देखते हरी भरी हो जाय। हमारी इस तहरीक का अस्ल मक़सद इस वक़्त

बस दीन की तलब व क़द्र पैदा करने की कोशिश करना है न कि सिर्फ़ कलमा और नमाज़ वग़ैरा का सही करना और तालीम व तरबियत करना।

[92]

फ़रमाया—हमारे काम के तरीक़े में दीन के वास्ते जमाअतों की शक्ल में घरों से दूर निकलने को बहुत ज़्यादा अहमियत है। इसका ख़ास फ़ायदा यह है कि आदमी इस्के ज़रिये अपने पुराने और ठहरे हुये माहौल से निकल कर एक नये नेक और चलने फिरने वाले माहौल में आ जाता है जिसमें उसके दीनी जज़बात के बढ़ने का बहुत कुछ सामान होता है। और इस सफ़र व हिजरत की वजह से जो तरह तरह की तकलीफ़ें, मुसीबतें पेश आती हैं और दरबदर फिरने में जो ज़िल्लतें अल्लाह के लिये बरदाश्त करनी होती हैं उनकी वजह से अल्लाह की रहमत ख़ास तौर से मुतवज्जेह हो जाती है।

"وَالَّذِيْنَ جَاهَدُوْا فِيْنَا لَنَهْدِيَنَّهُمْ سُبُلَنَا"

इसी वास्ते इस सफ़र व हिजरत का ज़माना जिस क़द्र लम्बा होगा उसी क़द्र मुफ़ीद होगा।

[93]

फ़रमाया—यह सफ़र ग़ज़वात[1] ही के सफ़र की ख़ुसूसियतें अपने अन्दर रखता है और इस लिये उम्मीद भी

---

1. वह जंग जिसमें हुज़ूर (सं) ने हिस्सा लिया हो।

वैसे ही अज्र की है। यह अगर्चे क़िताल नहीं है मगर जिहाद ही का एक हिस्सा ज़रूर है, जो बाज़ हैसियतों से अगर्चे क़िताल से कम है लेकिन बाज़ हैसियतों से उससे भी बुलन्द है। जैसे क़िताल में शिफ़ा–ए–ग़ैज़[1] और इतफ़ा–ए–शोला–ए–ग़ज़ब[2] की सूरत भी है और यहाँ अल्लाह के लिये सिर्फ़ कज़मे ग़ैज़[3] है और उसके दीन के लिये लोगों के क़दमों में पड़के और उनकी मन्नतें व ख़ुशामदें करके बस ज़लील होना है।

[94]

फ़रमाया—यह तहरीक दरहक़ीक़त बहुत बड़े दर्जे की है। अफ़सोस! लोग इसकी हकीक़त को समझते नहीं।

[95]

फ़रमाया—जो लोग हमारी इस तब्लीग़ का काम और तरीक़ा सीखने के लिये निज़ामुद्दीन आना चाहें उनको यह चन्द बातें ज़रूर पहले ही से अच्छी तरह याद करा दी जायें।

1. ज़्यादा से ज़्यादा वक़्त निकाल के आयें।
2. एक दो ही दफ़ा के आने को काफ़ी न समझें बल्कि आते रहा करें।
3. यह इरादा करके आयें कि "निज़ामुद्दीन" में पड़ा रहना नहीं होगा बल्कि हिदायत के मुताबिक़ जगह जगह

---

1. गुस्से का इलाज 2. गुस्से की आग बुझाना
3. गुस्से को पीना

फिरना होगा, हां इस दरमियान में कभी कभी निज़ामुद्दीन रहना भी होगा।

4. यह भी अच्छी तरह उनको याद करा दिया जाय कि जिस वक़्त उनके कुछ साथी वापसी का इरादा करने लगें और उनकी देखा देखी उनके दिलों में भी वापसी की ख़्वाहिश पैदा होने लगे तो ऐसे वक़्त में अपनी ख़्वाहिश पर न चलने और हिम्मत व इरादे के साथ काम में लगे रहने का अज्र बेहद व बेहिसाब है और उन वापस न होने वाले असहाबे अज़ीमत[1] साथियों की मिसाल अल्लाह के रास्ते में जिहाद करने वाले उन लोगों की सी है जो ऐसे वक़्त में जिहाद के मैदान में डटे रहें जबकि दायें बायें के लोग भाग खड़े हुये हों।

5. यह भी बता दिया जाय कि इस राह में बहुत से मकारेह[2] पेश आयेंगे और आख़िरत में अज्र उन मकारेह ही की निस्बत से मिलेगा।

---

1. पुख़्तगी के साथ जमे रहने वाले।
2. तकलीफ़ें व मुसीबतें और मिज़ाज के ख़िलाफ़ काम।

क़िस्त नम्बर-6

[96]

फ़रमाया–कभी कभी बैठकर यह सोचना चाहिये कि हमारा असर और पहुंच कहां कहां है? और कहाँ कहाँ हमारी दीनी कोशिशें नतीजा ख़ेज़ हो सकती हैं? फिर गौर करना चाहिये कि वहां इस दीनी दावत के फैलाने की तदबीरें क्या हैं? और क्या रास्ता हमें इख़्तियार करना चाहिये और वहाँ हमारा काम का तरीक़ा क्या होना चाहिये?

फिर इसी सोचे हुये नक़्शे के मुताबिक़ अल्लाह पर भरोसा करके काम शुरु कर देना चाहिये।

[97]

फ़रमाया-जिन जिन हज़रात के मुतअल्लिक़ यह अन्दाज़ा हो कि हम उसको इस दीनी काम की तरफ़ बग़ैर इसके मुतवज्जेह नहीं कर सकते कि पहले एक अर्से तक उनकी ख़िदमत करके उनके मिज़ाज से क़ुर्ब व तअल्लुक़ पैदा करें, तो फिर पहले उनकी ख़िदमत ही करना चाहिये लेकिन इस ख़िदमत में भी अल्लाह के काम में उनको लगाने ही की नियत रखना चाहिये और उम्मीद के साथ अल्लाह से दुआयें भी करते रहना चाहिये।

[98]

फ़रमाया—बाज़ हज़रात को हमारी इस ईमानी दावत की गहराइयां मालूम न होने की वजह से उससे लगाव नहीं है और इसके बजाय दीन के बाज़ उन अहकाम व मसायल के रायज करने की कोशिश को ज़्यादा अहम समझते हैं जिनमें मुसलमानों से कोताहियां हो रही है। जैसे....साहब और उनके हलके वालों की नज़र में ख़ास तौर से शरीअत के फलां फलां ख़ास अहकाम को फैलाने और बुरी रसमों की अल्लाह व दुरुस्तगी बहुत ज़्यादा अहमियत रखती है तो ऐसे हज़रात के साथ काम का तरीक़ा यह होना चाहिये कि मेवात में उन अहकाम व मसाएल की कोशिश और रसमों की इसलाह की कोशिश के वास्ते ही उनको उठाया जाय। अभी तक मेवात में तरके की तक़सीम के बारे में भी बड़ी कोताही है। शरीअत के मुताबिक़ तरका तक़सीम करने का रिवाज बहुत कम हो सका है, ऐसी ही और भी बहुत सी बुरी रसमें अभी रायज हैं जैसे अभी तक गोथ में शादी करने का रिवाज नहीं हुआ है।

तो.....साहब और उनके मानने वालों को मेवात में इनहीं अहकाम के फैलाने के वास्ते उठाया जाय और उनको यह बतलाया जाय कि यह मेवाती लोग इस तब्लीग़ी दावत से एक दर्जा में वाक़िफ़ हो चुके हैं और किसी दर्जे में उसको अपना चुके हैं, पस अगर आप उनके इस तब्लीग़ी काम की थोड़ी सी भी सरपरस्ती फ़रमायेंगे तो फिर इन्शाअल्लाह आपके उन ख़ास इसलाही मक़सदों और रसमों की इसलाह के काम में उनसे आपको बहुत मदद मिलेगी और उनके ज़रीये आप मेवात में उन अहकाम व मसाएल को फैलाने और जाहिलियत की रसमों की इस्लाह का काम आसानी से कर सकेंगे।

इस तरह उन हज़रात को तुम्हारी तब्लीग़ी मुहिम की गहराइयों और वुसअतों को समझने और उसके असरात व नतीजों का जायज़ा लेने का भी मौक़ा मिल जायगा और फिर इन्शाअल्लाह उनको इस तरफ़ भी तवज्जोह हो जायेगी।

[99]

फ़रमाया—मैं अगर किसी हकीम को भी इलाज के लिये बुलाता हूं तो दरअस्ल तब्लीग़ी काम को सामने रख कर बुलाता हूं और उनसे अपना इलाज कराने को उसको अल्लाह के काम में लगाने का बहाना बनाना चाहता हूं, इस लिये सिर्फ़ उनही हकीमों को बुलाने की इजाज़त देता हूं जिनसे इस दीनी दावत के सिलसिले में कोई उम्मीद और गुन्जाइश हो।

[100]

फ़रमाया—मैं अपनी सेहत और ज़िन्दगी बाक़ी रखने के लिये खड़े होकर नमाज़ पढ़ने के बजाय बैठ कर नमाज़ पढ़ना तो जायज़ समझता हूं लेकिन इस दीनी काम के क़ायम व बक़ा[1] पर ज़िन्दगी के ख़्याल को मुक़द्दम[2] नहीं समझता।

[101]

फ़रमाया—हमारी इस दावत व तब्लीग़ का एक अहम उसूल यह है कि आम लोगों के बयान में तो सख़्ती बरती जाय लेकिन ख़ास लोगों के ख़िताब में इन्तिहाई नरम, बल्कि

---

1. बाकी रहना 2. पहले, आगे

जहाँ तक हो सके लोगों की इस्लाह के लिये आम बयान ही किया जाय, यहां तक कि अगर अपने किसी ख़ास साथी की कोई ग़लती देखी जाय तो जहाँ तक हो सके उसकी इस्लाह की कोशिश भी आम बयान ही के सिलसिले में की जाय यही हुज़ूर सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम का आम तरीक़ा था कि ख़ास लोगों की ग़लतियों पर तम्बीह भी आप "मा बा–ल अक़वामुन" के आम उनवान से फ़रमाते थे–और अगर ख़ास बयान ही की ज़रूरत समझी जावे तो मोहब्बत और नरमी के अलावा इस बात का भी ख़्याल रहे कि फ़ौरन उसको न टोका जाय। ऐसी सूरत में अकसर लोगों का नफ़्स जवाब दही और हुज्जत बाज़ी पर तय्यार हो जाता है, इस लिये उस वक़्त तो टाल दिया जावे, फिर दूसरे मुनासिब वक़्त में ख़ुलूस व मुहब्बत के साथ उसकी ग़लती पर उसको ख़बरदार किया जावे।

[102]

फ़रमाया–अपनी इस तहरीक के ज़रिये हम हर जगह के उल्मा और अहले दीन और दुनिया दारों में मेल व मिलाप और सुलह व सफ़ाई भी कराना चाहते हैं, और ख़ुद उलमा और अहले दीन के मुख़्तलिफ़ हलक़ों में उलफ़त व मोहब्बत और मदद व एकता का पैदा करना इस सिलसिले में हमारे पेशे नज़र बल्कि हमारा अहम मक़सद है और यह दीनी दावत ही इन्शाअल्लाह इसका ज़रीआ व वसीला बनेगी। अफ़राद और जमाअतों में इख़्तिलाफ़ात ग़र्ज़ों ही के इख़्तिलीफ़ात से तो पैदा होते और तरक़्क़ी करते हैं। हम मुसलमानों के तमाम

गिरोहों को दीन के काम में लगाने और दीन की ख़िदमत को उनका सबसे अहम मक़सद बनाने की इस तरह कोशिश करना चाहते हैं कि उनके ज़ज़बात और काम के तरीक़ें में बराबरी हो जाय। सिर्फ़ यही चीज़ नफ़रतों को मोहब्बतों से बदल सकती है—दो लोगों में सुलह कराने का ज़रा सोचो कि कितना बड़ा अज्र है। फिर उम्मत के मुख़तलिफ़ तबक़ों और गिरोहों में सुलह की कोशिश का जो अज्र होगा उसका कोई क्या अन्दाज़ा कर सकता है।

[103]

फ़रमाया—हमारे इस काम को समझने और सीखने के लिये सही तरतीब यह है कि पहले यहाँ आकर कुछ दिन क़याम किया जाय और यहाँ के रहने वालों (तब्लीग़ के पुराने काम करने वालों) से बातें की जायें और सिर्फ़ मेरी मुलाक़ात और मुझ से ही बातें करने की घात में न रहा जाय। हां जिस वक़्त मैं ख़ुद कहूँ उसको सुन लिया जाय, और यहाँ के चारों तरफ़ काम करने के लिये भी निकला जाय, यानी रोज़ाना की गश्त में शिरकत की जाय, फ़िर कुद दिनों के लिये मेवात जाकर काम की मश्क़ की जाय। उसके बाद अपनी जगह पर जाकर काम किया जाय।

[104]

एक ज़रूरत यह है कि तब्लीग़ से तअल्लुक़ रखने वालों का यहाँ ऐसा मिलाजुला मजमा रहे जिसमें हर तबक़े और हर तरह के लोग हों। उलमा भी हों, ज़िक्र वाले भी हों,

अंग्रेज़ी तालीम याफ़्ता भी हों, ताजिर भी हों, ग़रीब अवाम भी हों, इससे हमारे काम के तरीक़े को समझने और अमलन उस पर क़ाबू पाने में बड़ी मदद मिलेगी और हम जो मुख़्तलिफ़ तबक़ों का आपस में मेल जोल और मदद चाहते हैं उसकी बुनयाद भी इनशाअल्लाह इससे पड़ जायगी।

[105]

हमारी इस तहरीक में नियत के सही होने के एहतिमाम की बड़ी अहमियत है। हमारे काम करने वालों के सामने बस अल्लाह के हुक्म की इताअत और उसकी ख़ुशी होनी चाहिये। जिस क़द्र यह पहलू ख़ालिस और मज़बूत होगा उसी क़द्र अज्र ज़्यादा मिलेगा। इसी लिये यह आम क़ानून है कि जब दीन के लिये क़ुरबानियां करने की मसलिहतें और फ़ायदे खुल कर आंखों के सामने आजायें तो अज्र घट जाता है क्योंकि फिर क़ुदरती तौर पर वह मसलिहतें भी किसी क़द्र मक़सूद हो जाती हैं। देखो मक्का फ़तह होने से पहले जान की और माल की क़ुरबानियों का जो अज्र था बाद में वह नहीं रहा, क्योंकि फ़तहे मक्का हो जाने के बाद ग़लबे और हुकूमत की सूरत नज़रों के सामने आ गई।

لَا يَسْتَوِي مِنكُم مَّنْ أَنفَقَ مِن قَبْلِ الْفَتْحِ وَقَاتَلَ
أُولَٰئِكَ أَعْظَمُ دَرَجَةً مِّنَ الَّذِينَ أَنفَقُوا مِن
بَعْدُ وَقَاتَلُوا وَكُلًّا وَعَدَ اللَّهُ الْحُسْنَىٰ

[106]

तब्लीग़ की दावत के सिलसिले में शुरु तहरीक से काम करने वाले दो मुख़्लिस मेवातियों की तरफ़ इशारा करते हुये एक दिन आपने फ़रमाया :—

इस तब्लीग़ी काम की निसबत दावत की वजह से मेरी तरफ़ हो गई है, वरना दरअस्ल उसके करने वाले यह लोग हैं, मैं चाहता हूं कि जो लोग इस काम ही की वजह से मुझसे मोहब्बत रखते हैं वह इन लोगों की तरफ़ अपनी मोहब्बतों का रुख करें अगर्चे इसके वास्ते उन्हें अपने दिलों पर जब्र करना पड़े, इनसे मोहब्बत और इनकी ख़िदमत क़ुबूलियत का ज़रीआ है।

[107]

इसी सिलसिले में फ़रमाया-इन लोगों के मुझपर बड़े हुक़ूक़ हैं, मैं इनके हुक़ूक़ अदा नहीं कर सका हूँ, मेरी मोहब्बत वाले इनके हुक़ूक़ को पहचानें।

[108]

फ़रमाया-दीन की मेहनत में मुख़्लिसीन और सादिक़ीन का हिस्सा बस अल्लाह व रसूल और उनकी रज़ा का हासिल होना होता है। और जंगों मे माल व दौलत जब हाथ आये तो उसमें कमज़ोरों और मुअल्लिफ़तुल क़ुलूब का यानी दिल रखने का पहले ख़्याल किया जाता है। इसी उसूल पर मैं कहता हूं कि जिन लोगों ने हमारे काम की हक़ीक़त को अभी नहीं समझा है और इस लिये उन्हें इससे लगाव पैदा नहीं

हुआ है। उनको बुलाया जाय तो उसके किराये की भी फ़िक्र की जाय और उनकी ख़िदमत और ख़ातिर का भी अपने इमकान भर एहतिमाम किया जाय, और जो मुख़लिसीन काम की हक़ीक़त को समझ कर इसमें लग गये हैं उनके लिये इन चीज़ों की फ़िक्र न उठाई जाय।

[109]

फ़रमाया-आज कल दीन के सिलसिले में यह ग़लत फ़हमी निहायत आम हो गई है कि शुरु को आख़िर का और ज़रीओं को मक़सदों का दर्जा दे दिया जाता है। अगर ग़ौर करोगे तो मालूम होगा कि दीन के तमाम दर्जों में यह ग़लती घुस गई और हज़ारो ख़राबियों की यह जड़ है,

[110]

फ़रमाया-

"إِنَّ لِلسَّائِلِ عَلَيْكَ حَقًّا وَإِنْ جَاءَ عَلَى فَرَسٍ"

का मतलब समझने में आम तौर से एक ग़लती होती है। समझा जाता है कि सवाल करने वाला चाहे कैसा ही और किसी हाल का हो उसको उसका मसऊल (यानी जो वह मांगे देना ही चाहिये) हालांकि यह ग़लत है। बल्कि हदीस का मतलब सिर्फ़ यह है कि उसका तुम पर हक़ है कि उसके साथ मुनासिब और ख़ैर-ख़्वाही व हमदरदी वाला मामला

---

1. यह एक हदीस है, इसका तर्जुमा यह है कि "साएल का तुम पर हक़ है अगर्चे वह घोडे पर सवार होकर आये।"

करो, तकब्बुर (गुरूर) और तहक़ीर (नीचा समझना) के साथ पेश न आओ।

(أَمَّا السَّائِلَ فَلَا تَنْهَرْ)

अब यह ख़ैर–ख़्वाही कभी इस तरह होगी कि उसकी मांग पूरी कर दी जाय और कभी ख़ैर अन्देशी व हमदर्दी का तक़ाज़ा यह होगा कि उसको सवाल की ज़िल्लत से बचने की नसीहत की जाय और रोज़ी की किसी मुनासिब तदबीर की तरफ़ उसकी रहनुमाई की जाय और इसमें मौक़े के मुताबिक़ उसको आसानी पहुंचाई जाय। जैसा कि रसूलल्लाह सल्लल्लाह अलैहि वसल्लम ने बाज़ सवाल करने वालों के साथ किया कि उनके खाने का प्याला तक नीलाम करके उसकी क़ीमत से कुल्हाड़ी ख़रीदवा दी और फ़रमाया कि 'जंगल से लकड़ियां काट कर लाओ और बेचो और अपना गुज़ारा करो।''

पस अगर सवाल करने वाला माज़ूर व मजबूर नहीं है बल्कि ऐसा है जो अपने गुज़ारे के लिये कुछ कर धर सकता है तो उसका हक़ यही है कि हिकमत के साथ उसको सवाल से बचाया जाय और किसी काम से लगाने की कोशिश की जाय।

इसी सिलसिले में फ़रमाया-क़ुरआनी आयतों के माने अगर हुज़ूर सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम के अमल की रोशनी में समझने की कोशिश की जाय तो कभी इनशाअल्लाह ग़लत फ़हमी न हो।

क़िस्त नम्बर-7

[111]

फ़रमाया - अम्बिया अलैहिमुस्सलाम बावजूदे कि मासूम और महफ़ूज़ हैं और उलूम व हिदायात सीधे हक़तआला से हासिल करते हैं, लेकिन जब उन तालीमात व हिदायात की तब्लीग़ में हर तरह के लोगों से मिलना जुलना और उनके पास आना जाना होता है तो उनके मुबारक और मुनव्वर दिलों पर भी उन अवामुन्नास की कदूरतों[1] का असर पड़ता है।[2] और फिर तन्हाई के ज़िक्र व इबादत के ज़रीये वह उस गर्द व गुबार को धोते हैं।

फ़रमाया-सूरा–ए–मुज़म्मिल में हुज़ूर सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम को रात के क़याम (तहज्जद) का हुक्म देते हुये

---

1. दिलों की गन्दगी
2. मौलाना रहमतुल्लाह अलैह के इस ख़्याल की ताईद इस हदीस से भी होती है कि एक दिन रसूलल्लाहु अलैहि वसल्लम सुबह की नमाज़ में भूल में पड़ गये तो नमाज़ से फ़ारिग़ होने के बाद आप ने फ़रमाया "मुक़तदियों में कुछ वह लोग हैं जो वज़ू व पाकी अच्छा तरह नहीं करते हैं, उन्हीं के असर से हमारे पढ़ने में गड़बड़ पड़ती है।" (मिशकात–किताबुत्तहारह)

जो यह फ़रमाया गया है कि

"اِنَّ لَكَ فِى النَّهَارِ سَبۡحًا طَوِيۡلًا"

(ऐ रसूल! दिन में तुमको बहुत चलना फिरना रहता है)

तो इसमें इस तरफ़ भी इशारा है कि सय्यदुल अम्बिया सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम को भी दिन की दौड़ धूप और चलत फिरत की वजह से रात की अंधेरी और तन्हाई में सुकून के साथ इबादत की ज़रुरत थी। फिर इस आयत से अगली आयत में मुत्तसिलन फ़रमाया गया

"وَاذۡكُرِ اسۡمَ رَبِّكَ وَتَبَتَّلۡ اِلَيۡهِ تَبۡتِيۡلًا"

(और अपने रब के नाम की याद कर और पूरी एकाग्रता से बिल्कुल उसी की तरफ मुतवज्जेह हो)

तो इससे भी इस मज़मून की मज़ीद ताईद होती है कि तब्लीग़ी दौड़ धूप करने वालों को ज़िक्र व फ़िक्र और एकाग्रता के साथ अल्लाह की इबादत की ख़ुसूसियत से ज़रुरत होती है। पस हमको भी उसके मुताबिक़ अमल करना चाहिये–बल्कि हम इसके बहुत ज़्यादा मुहताज हैं, क्योंकि अव्वल तो हम ख़ुद कच्चे और ज़ुलमतों से भरे हुये हैं फिर अपने जिन बड़ों से हम दीनी बरकात और हिदायात हासिल करते हैं वह भी हमारी ही तरह ग़ैर मासूम हैं, और जिनमें तब्लीग़ के लिये जाते हैं वह भी आम इन्सान ही हैं ग़रज हममें ख़ुद भी कदूरतें हैं और हमारे दोनों तरफ़ भी इन्सानी कदूरतें हैं, जिनका हम पर असर पड़ना ज़रुरी और कुदरती है, इस लिये हम इसके बहुत ही ज़्यादा मुहताज हैं कि रात

की अंधेरियों और तन्हाइयों में अल्लाह के ज़िक्र व इबादत का एहतिमाम और पाबन्दी करें। दिल पर पड़े हुये बुरे असरात का यह ख़ास इलाज है।

इसी सिलसिले में फ़रमाया-यह भी ज़रुरी है कि अपने जिन बड़ों से हम दीनी बरकात हासिल करें उनसे अपना तअलुक़ सिर्फ़ अल्लाह के लिये रखें और सिर्फ़ उसी लाइन की उन बातों व कामों और हालात से मतलब रखें, बाक़ी दूसरी लाइनों की उनकी निजी और घरेलू बातों से बेतअल्लुक़ बल्कि बे ख़बर रहने की कोशिश करें क्योंकि यह उनका अपना माआमला है। ला मुहाला उसमें कुछ कदूरतें होंगी। और जब आदमी अपनी तवज्जोह उनकी तरफ़ को चलावेगा तो वह उसके अन्दर भी आयेंगी, और किसी वक़्त एतिराज़ भी पैदा होगी जो दूरी और महरुमी का सबब हो जायेगा, इसी लिये बुज़ुर्गों की किताबों में सालिक[1] को बुज़ुर्ग के घरेलू हालात पर नज़र न करने की ताकीद की गई है।

[112]

फ़रमाया-इल्म वाले और असर वाले हज़रात एक सिलसिला यह शुरु करें कि हर जुमे के लिये पहले से सोच कर तै कर लिया करें कि हम यह जुमा फ़लां मोहल्ले की मस्जिद में पढ़ेंगे और इस इन्तिख़ाब में ग़रीब, पिछड़ी जातियों और जाहिल आबादियों का ज़्यादा लेहाज़ रखें। जैसे जिन मोहल्लों में धोबी, सक़्क़े, तांगा गाड़ी चलाने वाले, कुली और सब्ज़ी बेचने वाले जैसे बस्ते हों (जिनमें दीन से

1. राह पर चलने वाला।

जिहालत और ग़फ़लत अगर्चे बहुत ज़्यादा है लेकिन नाफ़रमानी और इन्कार की हालत पैदा नहीं हुई है) तो ऐसे लोगों की किसी आबादी की मस्जिद पहले से तजवीज़ करलें और अपने तअल्लुक़ वालों और मिलने जुलने वाले लोगों को भी इसकी इत्तीला दे दें, और साथ चलने पर भी उन्हें उभारें। फिर वहां पहुंचकर जुमे की नमाज़ से पहले मोहल्ले में तब्लीग़ी गश्त करके लोगों को नमाज़ के लिये तय्यार करके मस्जिद में लायें फिर थोड़ी देर के लिये उन्हें रोक कर दीन की अहमियत और उसके सीखने पर ज़रुरत समझाकर दीन सीखने के वास्ते तब्लीग़ी जमाअतों में निकलने की दावत दें और उनको समझायें कि इस तरीक़े पर वह कुछ रोज़ में दीन का ज़रुरी इल्म व अमल सीख सकते हैं। फिर इस दावत पर अगर थोड़े से थोड़े आदमी भी तय्यार हो जायें तो किसी मुनासिब जमाअत के साथ उनको भेजने का बन्दोबस्त करें।

इसी सिलसिले में फ़रमाया-अगर किसी जगह के कुछ ग़रीब लोग तब्लीग़ी जमाअत के साथ निकलने पर तय्यार हो जायें और ख़र्च से मजबूर हों तो कोशिश करके जहां तक हो सके उन्हीं के माहौल से कुछ अमीरों को भी उनके साथ के लिये उठाया जाय और उन्हें यह भी बताया जाय कि अल्लाह की राह में निकलने वाले ग़रीबों और कमज़ोरों की इमदाद का अल्लाह के यहां क्या दर्जा है। लेकिन साथ ही पूरी अहमियत से यह बात भी उनको याद कराई जाय कि अगर वह अपने किसी ग़रीब साथी की मदद करना चाहें

तो उसके उसूल और उसका तरीक़ा इस राह के पुराने तजुर्बाकार काम करने वालों से ज़रूर मालूम करें। और उनके मशवरे से ही यह काम करें। उसूल के ख़िलाफ़ और ग़लत तरीक़े पर किसी की मदद करने से किसी वक़्त बहुत सी ख़राबियाँ पैदा हो जाती हैं।

(फिर उस निफ़ाक़ यानी दीन के लिये निकलने वाले ग़रीब और मजबूर लोगों पर ख़र्च करने के नीचे लिखे गये यह कुछ उसूल हज़रत मौलाना ने बयान फ़रमाये और शायद इस आजिज़ से यह भी इरशाद फ़रमाया कि इनको लिख लो)

(क) मजबूरों को इस तरह हिकमत से दिया जाय कि वह इसको कोई मुस्तक़िल सिलसिला न समझने लगें और उनमें इशराफ़ पैदा न होने पाये।

(ख) देना "तालीफ़" के लिये हो (यानी दीन से लगाव और तअल्लुक़ पैदा करने के वास्ते हो) इसलिये सिर्फ़ ज़रूरत भर ही तालीफ़ हो, फिर जैसे–जैसे उनमें दीन की क़द्र व तलब और इस काम से तअल्लुक़ व लगाव बढ़ता जाय उसी क़द्र माली इमदाद से हाथ खींचा जाय, और साथ रहने व बात–चीत वग़ैरा के ज़रीये यह जज़्बा उनमें पैदा किया जाय कि वह मेहनत और मजदूरी कर कर के यह काम करें, या जिस तरह अपनी और ज़रूरतों के लिये क़र्ज़ लेते हैं, उसको भी एक अहम ज़रूरत समझते हुये मौक़े के हिसाब से इसके लिये क़र्ज़ लें। इस राह में दूसरे का एहसानमन्द न

होना "अज़ीमत" है। हिजरत के वक़्त सिद्दीक़े अकबर (रज़ि) जैसे फ़िदाई ने रसूलल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम को ऊंटनी पेश की थी तो हुजूर ने क़ीमत तै करके क़र्ज़ ली।

लेकिन जब तक रग़बत व तअल्लुक़ का यह दर्जा और यह जज़बा पैदा न हो उस वक़्त तक मुनासिब तौर पर उनकी माली मदद की जाती रहे।

(ग) माली इमदाद के आदाब में से एक यह भी है कि बहुत ही छुपे तौर पर और इज़्ज़त व एहतिराम के साथ दिया जाय और देने वाले अमीर लोग दीन की ख़िदमत में लगे हुये ग़रीबों के क़ुबुल कर लेने को उनका एहसान समझें और उनको अपने से बड़ा समझें कि बावजूद ग़रीबी व तंगी के वह दीन के लिये घर से निकलते हैं, दीन के लिये घर से निकलना हिजरत की सिफ़त है, और उनकी मदद करना नुसरत की सिफ़त है।

और "अनसार" कभी "मुहाजिरीन" के बराबर नहीं हो सकते।

(घ) इस राह में काम करने वालों की मदद ज़कात व सदक़ात से ज़्यादा तोहफ़े की सूरत में की जाय। ज़कात व सदक़ात की मिसाल हांडी के मैल कुचैल और रद्दी हिस्से की सी है कि उसको निकालना ज़रूरी है वरना सारी हंडिया ख़राब रहेगी। और तोहफ़े की मिसाल ऐसे समझो जैसे कि तय्यार खाने में खुशबू

डाली जाय, और उस पर चांदी सोने के वरक़ लगा दिये जायें।

(ङ) दीन के लिये घर से निकलने वालों की मदद की एक सबसे बड़ी सूरत यह भी है कि उनके घर वालों के पास जाकर उनके सौदा वग़ैर और उनकी ज़रुरतों की फ़िक्र करें, और उनको आराम पहुंचाने की कोशिश करें और उन्हें बतायें कि तुम्हारे घर के लोग कैसे अज़ीमुश्शान काम में निकले हुये हैं, और वह किस क़दर ख़ुशनसीब हैं, ग़रज़ यह कि ख़िदमत और तरग़ीब से इतना मुतमइन करें कि वह ख़ुद अपने घर के निकले हुये लोगों को लिखें कि "हम लोग यहां हर तरह आराम से हैं, तुम इत्मिनान के साथ दीन के काम लगे रहो।"

(च) माली मदद के सिलसिले में हालात जानने की कोशिश करने की भी ज़रुरत है (यानी दीन के काम में लगे रहने वालों के हालात पर ग़ौर करे, और टोह लगाये कि उनकी क्या ज़रुरियात हैं, और उनकी गुज़र बसर कैसी है)।

(छ) हालात जानने की एक सूरत जिसको ख़ास तौर से रिवाज देना चाहिये यह है कि बड़े लोग अपनी औरतों को दीन के वास्ते निकलने वाले ग़रीबों के घरों में भेजा करें। इससे उन ग़रीबों के घर वालों की दिलदारी और हौसला-अफ़ज़ाई भी होगी और उनके अन्दरुनी हालात का भी कुछ इलम होगा।

[114]

इसी सिलसिले में फ़रमाया-इनफ़ाक़ फ़ी सबीलिल्लाह (ख़ुदा की राह में ख़र्च करने) पर नुसूस[1] में दुनयावी बरकात का जो वादा किया गया है वह उसका "अज्र" नहीं है। नेकियों के अस्ल अज्र को तो दुनिया बरदाश्त ही नहीं कर सकती, वहां की ख़ास नेमतों की बरदाश्त यहाँ कहाँ? इस दुनिया में तो पहाड़ जैसी सख़्त मख़लूक़ और हज़रत मूसा अलैहिस्सलाम जैसे बड़े पैग़म्बर भी एक तजल्ली की ताब न ला सके।

فَلَمَّا تَجَلّٰى رَبُّهٗ لِلْجَبَلِ جَعَلَهٗ دَكًّا وَّخَرَّ مُوْسٰى صَعِقًا۔

फ़रमाया-जन्नत की नेमतें अगर यहां भेज दी जायें तो ख़ुशी से मौत वाक़े हो जाय। यही हाल वहाँ के अज़ाब का है। अगर दोज़ख़ का एक बिच्छू इस दुनियां की तरफ़ रुख़ करे तो यह सारी दुनिया उसके ज़हर की तेज़ी से सूख जाय।

[115]

इसी सिलसिले में फ़रमाया-ख़ुदा की राह में ख़र्च करने वालों की मिसाल क़ुरआन पाक में जो उस शख़्श से दी गई है जिसने एक दाना बोया और उससे सात सौ दाने पैदा हुये।

مَثَلُ الَّذِيْنَ يُنْفِقُوْنَ اَمْوَالَهُمْ فِيْ سَبِيْلِ اللّٰهِ كَمَثَلِ حَبَّةٍ اَنْۢبَتَتْ سَبْعَ سَنَابِلَ فِيْ كُلِّ سُنْۢبُلَةٍ مِّائَةُ حَبَّةٍ ۭ وَاللّٰهُ يُضٰعِفُ لِمَنْ يَّشَاۗءُ ۭ وَاللّٰهُ وَاسِعٌ عَلِيْمٌ

1. क़ुरआन व हदीस

तो यह मिसाल दुनियावी बरकात ही की है। आख़िरत में इस इनफ़ाक़[1] का जो अज्र मिलेगा वह तो बहुत ही ऊँचा होगा ओर उसकी तरफ़ इशारा इससे अगली आयत में है।

اَلَّذِيْنَ يُنْفِقُوْنَ اَمْوَالَهُمْ فِيْ سَبِيْلِ اللّٰهِ ثُمَّ لَا يُتْبِعُوْنَ مَآ اَنْفَقُوْا مَنًّا وَّلَآ اَذًى لَّهُمْ اَجْرُهُمْ عِنْدَ رَبِّهِمْ وَلَا خَوْفٌ عَلَيْهِمْ وَلَا هُمْ يَحْزَنُوْنَ

इस में "لَهُمْ اَجْرُهُمْ عِنْدَ رَبِّهِمْ"

का इशारा उसी असली अज्र की तरफ़ है जो मौत के बाद आख़िरत में मिलने वाला है।

[116]

इसी सिलसिले में फ़रमाया-अस्ल तो यही है कि अल्लाह की रज़ा और आख़िरत के अज्र ही के लिये दीनी काम किया जाय लेकिन तरग़ीब में मौक़े के मुताबिक़ दुनियावी बरकात का भी ज़िक्र करना चाहिए बाज़ आदमी ऐसे होते हैं कि शुरू में दुनियावी बरकात ही की उम्मीद पर काम में लगते हैं, और फिर इसी काम की बरकत से अल्लाह तआला उन्हें हक़ीक़ी इख़्लास भी अता फ़रमा देता है।

---

1. ख़र्च करना

رَبِّ إِنِّي لِمَا أَنزَلْتَ إِلَيَّ مِنْ خَيْرٍ فَقِيرٌ

फ़रमाया–दुनियावी बरकात हमारे लिये मौऊद[1] हैं, उनको मक़सूद व मतलूब नहीं बनाना चाहिये, लेकिन उनके लिये दुआयें ख़ूब करना चाहियें, अल्लाह की तरफ़ से आने वाली हर नेमत का बन्दा बहुत ज़्यादा मोहताज है।

[117]

फ़रमाया-अल्लाह तआला ने जो वादे फ़रमाये हैं, बिला शुबह वह बिल्कुल यक़ीनी हैं, और आदमी अपनी समझ–बूझ और अपने तजुर्बात की रोशनी में जो कुछ सोचता है और जो इरादे बनाता है वह सिर्फ़ ख़्याली और वहमी बातें हैं मगर आज का आम हाल यह है कि अपने ज़ेहनी इरादों और अपने तजवीज़ किये हुये ज़रीओं व अस्बाब और अपनी सोची हुई तदबीरों पर यक़ीन व भरोसा करके लोग उनके मुताबिक़ जितनी मेहनतें और कोशिशें करते हैं अल्लाह के वादों की शर्तें पूरी करके उनका मुस्तहिक़ बनने के लिये उतना नहीं करते, जिससे मालूम होता है कि अपने ख़्याली अस्बाब पर उनको जितना भरोसा है उतना अल्लाह के वादों पर नहीं है, और यह हाल सिर्फ़ हमारे अवाम का ही नहीं है बल्कि सब ही अवाम व ख़्वास इल्ला मन शाअल्लाह इलाही वादों

1. जिनका वादा किया गया है।

वाले यक़ीनी और रोशन रास्ते को छोड़ कर अपनी ख़्याली और वहमी तदबीरों ही में उलझे हुये हैं। पस हमारी इस तहरीक का ख़ास मक़सद यह है कि मुसलमानों की ज़िन्दगी से इस उसूली और बुनयादी ख़राबी को निकालने की कोशिश की जाय, और उनकी ज़िन्दगियों और सरगरमियों को ग़लत ख़्यालात और वहमों की लाइन के बजाय अल्लाह के वादों के यक़ीनी रास्ते पर डाला जाय। अम्बिया अलैहिमुस्सलाम का तरीक़ा यही है और उन्होंने अपनी उम्मतों को यही दावत दी है कि वह अल्लाह के वादों पर यक़ीन करके और भरोसा करके उनकी शर्तों को पूरा करने में अपनी सारी कोशिशें ख़र्च करके उनके हक़दार बनें। अल्लाह के वादों के बारे में जैसा तुम्हारा यक़ीन होगा वैसा ही तुम्हारे साथ अल्लाह का मामला होगा। हदीसे क़ुदसी है।[1]

"أَنَا عِنْدَ ظَنِّ عَبْدِيْ بِيْ"

---

1. हज़रत मौलाना का यह मलफ़ूज बहुत मुख़तसर अलफ़ाज में था, आम लोगों को इसका समझना मुश्किल होता। नाचीज़ मुरत्तिब ने किसी क़दर वज़ाहत और तशरीह के साथ अपनी इबारत में हज़रत के मतलब को अदा किया है, गोया इस मलफ़ूज़ के अलफ़ाज़ व इबारत की ज़िम्मेदारी ख़ास तौर से इस आजिज़ पर है। अगर्चे अक्सर दूसरे मलफ़ूज़ात में भी वज़ाहत व आसान करने के ख़्याल से ताबीर ओर तर्जे अदा में कुछ थोड़ी बहुत तब्दीली की गई है--नोमानी

[118]

फ़रमाया-इस राह में काम करने की सही तरतीब यूं है कि जब कोई क़दम उठाना हो, जैसे खुद तबलीग़ में जाना हो या कोई तब्लीग़ी क़ाफ़ला कहीं भेजना हो, या शुकूक व शुबहात रखने वाले किसी शख़्स को मुतमइन करने के लिये उससे मुख़ातब होने का इरादा हो तो सबसे पहले अपनी नाअहलियत और बेबसी और वसायल व असबाब से अपने ख़ाली हाथ होने का ख़्याल करके अल्लाह को हाज़िर व नाज़िर और क़ादिरे मुतलक़ यक़ीन करते हुये पूरी गिड़गिड़ाहट व रोने के साथ उससे अर्ज़ करे कि ऐ खुदा! तूने बारहा बग़ैर अस्बाब के भी सिर्फ़ अपनी पूरी कुदरत से बड़े-बड़े काम कर दिये हैं। इलाही बनी इसराईल के लिये तूने सिर्फ़ अपनी कुदरत ही से समुन्दर में खुशक रास्ता पैदा कर दिया था। हज़रत इब्राहीम अलैहिस्सलाम के लिये तूने अपनी रहमत और कुदरत ही से आग को गुलज़ार बना दिया था और ऐ अल्लाह! तूने अपनी छोटी-छोटी मख़लूक़ात से भी बड़े-बड़े काम लिये हैं, अबाबील से तूने अब रहा के हाथियों वाले लशकर को हार दिलवाई और अपने घर की हिफ़ाज़त कराई। अरब के ऊंट चराने वाले अनपढ़ों से तूने दीन को सारी दुनिया में चमकाया और क़ैसर व किसरा की हुकूमतों को टुकड़े-टुकड़े करा दिया। पस ऐ अल्लाह! अपनी इस पुरानी सुन्नत के मुताबिक़ मुझ निकम्मे, नाकारा और अजिज़ व कमज़ोर बन्दे से भी काम ले। और मैं तेरे दीन के जिस काम का इरादा कर रहा हूं उसके लिये जो तरीक़ा

तेरे नज़दीक सही है मुझे उसकी तरफ़ रहनुमाई फ़रमा, और जिन अस्बाब की ज़रुरत हो वह सिर्फ़ अपनी कुदरत से अता फ़रमादे।

बस अल्लाह से यह दुआ मांग कर फिर काम में लग जाय। जो अस्बाब अल्लाह की तरफ़ से मिलते रहें उनसे काम लेता रहें और सिर्फ़ अल्लाह ही की कुदरत व मदद पर पूरा भरोसा रखते हुये अपनी कोशिश भी भरपूर करता रहे और रो–रो कर उससे मदद और "इनजाज़े वअ़द"[1] की दरख़्वास्तें भी करता रहे बल्कि अल्लाह की मदद ही को असल समझे और अपनी कोशिश को इसके लिये शर्त और परदा समझे।

[119]

फ़रमाया-खुद काम करने से भी ज़्यादा तवज्जोह और मेहनत दूसरों को इस काम में लगाने और उन्हें काम सिखाने के लिये करनी चाहिये। शैतान जब किसी के मुतअल्लिक़ यह समझ लेता है कि यह तो काम के लिये खड़ा हो ही गया और अब मेरे बैठाये बैठने वाला नहीं तो फिर उसकी कोशिश यह होती है कि खुद तो लगा रहे मगर दूसरों को लगाने की कोशिश न करें, और इस लिये वह इस पर राज़ी हो जाता है कि यह शख़्स इस भलाई के काम में पूरे तौर से इस क़दर मसरुफ़ियत से लग जाय कि दूसरों को दावत देने और लगाने का उसको होश ही न हो, पस शैतान को हार

1. कुरआन का वादा "का–न हक़्क़न अलैना नसरुल मुमिनीन" की तरफ़ इशारा है।

यूं ही दी जा सकती है कि दूसरों को उठाने और उनहें काम पर लगाने और काम सिखाने की तरफ़ ज़्यादा से ज़्यादा तवज्जोह दी जाय और दावत इललख़ैर और दलालत इललख़ैर[1] के काम पर अज्र व सवाब के जो वादे क़ुरआन व हदीस में फ़रमाये गये हैं उनका ख़्याल और ध्यान करते हुये और उसी को अपनी तरक़्क़ी और तक़र्रब[2] का सबसे बड़ा ज़रीआ समझते हुये इसके लिये कोशिश की जाय।

[120]

फ़रमाया-दीन में ठहराव नहीं। या तो आदमी दीन में तरक़्क़ी कर रहा होता है और या नीचे गिरने लगता है। इसकी मिसाल यूं समझो कि बाग़ को जब पानी और हवा मुवाफ़िक़ हो तो वह हरियाली व ताज़गी में तरक़्क़ी ही करता रहता है और जब मौसम मुवाफ़िक़ न हो या पानी न मिले तो ऐसा नहीं होता कि वह हरयाली और ताज़गी अपनी जगह पर ठहरी रहे बल्कि उसमें कमी शुरु हो जाती है। यही हालत आदमी के दीन की होती है।

[121]

फ़रमाया-लोगों को दीन की तरफ़ लाने और दीन के काम में लगाने की तरकीबें सोचा करो (जैसे दुनिया वाले अपने दुनियावी मक़ासिद के लिये तरकीबें सोचते रहते हैं) और जिसको जिस तरह से मुतवज्जेह कर सकते हो उसके साथ उसी रास्ते से कोशिश करो।

---

1. नेकी की तरफ़ दावत और नेकी के कामों पर दलालत।
2. खुदा से क़रीब होना।

وَأْتُوا الْبُيُوتَ مِنْ أَبْوَابِهَا

[122]

फ़रमाया-तबीअत मायूसी (ना—उम्मीदी) की तरफ़ ज़्यादा चलती है, क्योंकि मायूस हो जाने के बाद आदमी अपने को अमल का ज़िम्मेदार नहीं समझता और फिर उसे कुछ करना नहीं पड़ता। खूब समझ लो यह नफ़्स और शैतान का बड़ा धोका है।

[123]

फ़रमाया—अस्बाब की कमी पर नज़र डाल कर मायूस हो जाना इस बात की निशानी है कि तुम अस्बाब परस्त हो और अल्लाह के वादों और उसकी ग़ैब की ताक़तों पर तुम्हारा यक़ीन बहुत कम है, अल्लाह पर भरोसा करके और हिम्मत करके उठो तो अल्लाह ही अस्बाब पैदा कर देता हैं, वरना आदमी खुद क्या कर सकता है। मगर हिम्मत और ताक़त भर कोशिश शर्त है।

क़िस्त नम्बर-8

[124]

जो लोग ज़िन्दगी के अकेले मामलात या साथ के कामों में यूरोप की मसीही क़ौमों के तौर तरीक़ों पर चल रहे हैं। और उसी को इस ज़माने में सही काम का तरीक़ा समझते हैं उनके रवैये पर रंज व अफ़सोस का इज़हार करते हुये एक बैठक में फ़रमाया:—

"ज़रा सोचो तो! जिस क़ौम के आसमानी उलूम (यानी हज़रत मसीह अलैहिस्सलाम के लाये हुये उलूम) का चिराग़, उलूमे मोहम्मदी (कुरआन व सुन्नत) के सामने बुझ गया बल्कि अल्लाह की तरफ़ से मनसूख़ कर दिया गया और बराहे रास्त उससे रोशनी हासिल करने को साफ़ मना फ़रमा दिया गया, उसी क़ौम की अहवा व अमानी (यानी उन यूरोपियन मसीही क़ौमों के अपने खुद के बनाये हुये नज़रियों) को इस कुरआन व सुन्नत की हामिल मोहम्मद सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम की उम्मत का इख़्तियार कर लेना और उसको सही काम का तरीक़ा समझना अल्लाह तआला के नज़दीक कितना बुरा और किस क़दर गुस्से वाला होगा? और अक़्ल के हिसाब से भी यह बात कितनी ग़लत है कि मोहम्मदी वही के महफ़ूज़ होते

हुये (जिसमें जिन्दगी के तमाम इनफ़िरादी व इजतिमाई शोबों के मुतअल्लिक़ पूरी हिदायतें मौजूद हैं) ईसाई क़ौमों के तौर तरीक़ों की पैरवी की जाय, क्या यह उलूमे मोहम्मदी की सख़्त नाक़दरी नहीं है?

[125]

फ़रमाया-हम जिस दीनी काम की दावत देते हैं ज़ाहिर में तो यह बड़ा सादा सा काम है, लेकिन हक़ीक़त में बड़ा नाज़ुक काम है। क्योंकि यहां मक़सूद सिर्फ़ करना कराना ही नहीं है बल्कि अपनी कोशिश करके अपनी मजबूरी का यक़ीन और अल्लाह तआला की क़ुदरत व मदद पर भरोसा पैदा करना है। अल्लाह का तरीक़ा यही है कि अगर अल्लाह की मदद के भरोसे पर अपनी सी कोशिश हम करें तो अल्लाह तआला हमारी कोशिश और हरकत ही में अपनी मदद को शामिल कर देते हैं। क़ुरआन मजीद की आयत

"وَيَزِدْكُمْ قُوَّةً إِلَىٰ قُوَّتِكُمْ"

में इसी तरफ़ इशारा है, अपने को बिल्कुल बेकार समझ के बैठे रहना तो "जबरियत" है और अपनी ही ताक़त पर भरोसा करना "क़दरियत (क़दर करना) है (और यह दोनों गुमराहियां हैं) और सही इस्लाम इन दोनों के दरमियान है। यानी अल्लाह तआला ने मेहनत और कोशिश की जो हक़ीर सी ताक़त और सलाहियत हमको दे रखी है, अल्लाह के हुक्म को पूरा करने में उसको तो पूरा-पूरा लगा दें और इसमें

कोई कसर उठा न रखें। लेकिन नतीजे के पैदा करने में अपने को बिल्कुल आजिज़ और बेबस यक़ीन करें और सिर्फ़ अल्लाह तआला की मदद ही पर भरोसा करें और सिर्फ़ उसी को काम करने वाला समझें।

फ़रमया-नबी (स.) के नमूने से इसकी पूरी तफ़सील मालूम की जा सकती है, मुसलमानों को हमारी दावत बस यही है।

[126]

फ़रमया-मैं चाहता हूँ कि अब मेवात में फ़रायज़ (यानी मीरास की तक़सीस के शरई तरीक़े) को ज़िन्दा करने और रिवाज देने की तरफ़ ख़ास तवज्जोह की जाय और अब जो तब्लीग़ी क़ाफ़ले वहां जायें वह फ़रायज़ के सिलसिले के वादों और इनको पूरा न करने पर वईदों को खुद याद करके जायें।

[127]

इसी बात के सिलसिले में फ़रमाया-"अमल की कोताही पर ही खुलूद फ़िन्नार[1] नहीं है बल्कि यह यक़ीन न होने और तकज़ीब[2] पर है।"

---

1. हमेशा के लिये जहन्नम में जाना 2. झुटलाना

[128]

फ़रमया-हर अमल का आख़िरी हिस्सा कुसूर का मान लेना और ख़शियऐ–रद[1] होना चाहिये (यानी हर नेक अमल को अपनी फ़ितरत से तो बेहतर से बेहतर अदा करने की कोशिश करे लेकिन फिर उसके ख़तम पर यह एहसास होना चाहिये कि जैसा अल्लाह तआला का हक़ था, और जैसा करना चाहिये था वैसा नहीं हो सका और इसकी बिना पर दिल में यह ख़ौफ़ और डर होना चाहिये कि कहीं हमारा यह अमल नाक़िस और ख़राब होने की वजह से मरदूद क़रार देकर क़यामत में हमारे मुंह पर न मार दिया जाय। और फिर इसी एहसास और इसी ख़ौफ़ व डर की बिना पर अल्लाह तआला के सामने रोया जाय और बार–बार इस्तिग़फ़ार किया जाय।

[129]

फ़रमाया-एतिक़ादात के बारे में भी उसूल यह है कि अपनी तरफ़ से तो एतिक़ाद को पक्का और मज़बूत रखने की पूरी कोशिश करे और उसके ख़िलाफ़ बुरे ख़यालात को भी न आने दे, लेकिन फिर भी डरता रहे कि जैसा उसका हक़ है वैसा यक़ीन मुझे हासिल है या नहीं।

फ़रमाया-सही बुख़ारी शरीफ़ में इब्ने अबी मुलैका का जो यह इरशाद नक़ल किया गया है कि

---

1. यानी अमल के क़ुबूल न होने का ख़तरा।

1. ”لقيت ثلثين من اصحاب النبي صلى الله
عليه وسلم كلهم يخشى على نفسه النفاق“

तो उसकी हक़ीक़त यही है।

फ़रमाया-एतिक़ाद ओर यक़ीन की ज़रुरत इसलिये भी है कि अल्लाह व रसूल ने जो कुछ फ़रमाया है दिल की तरफ़ से हैबत[2] इज़्ज़त और तौक़ीर के साथ उसका इस्तिक़बाल[3] हो, इस सूरत में अमल भी होगा और अमल में जान भी होगी।

[130]

एक दीनी मदरसे के एक मशहूर उस्ताद का ज़िक्र करते हुये फ़रमायाः—

"मैंने उनसे कहा कि आप लोगों के, अल्लाह की नज़र से गिरने और फिर उसी के नतीजे में दुनिया की नज़रों से भी गिर जाने की एक ख़ास वजह यह है कि अल्लाह व रसूल के रिश्ते से जो तअल्लुक़ात हैं उनकी इज़्ज़त आप लोगों में नहीं रही। और दुनियावी और माद्दी तअल्लुक़ात के दबाव को आप ज़्यादा क़ुबुल करने लगे। देखो! मेरा तुम्हारा तअल्लुक़ सिर्फ़ अल्लाह व रसूल के वासते है। मैंने तुम्हें

---

1. (तरजुमा) इब्ने अबी मुलैका ताबई फ़रमाते हैं कि मैंने ३० सहाबियों से मुलाक़ात की, मैंने उनमें से हर एक को अपने नफ़्स के बारे में निफ़ाक़ से डरता हुआ पाया।
2. डर
3. स्वागत

बुलाया तुम नहीं आये लेकिन................ के एक ख़त ने तुम्हें बुला लिया (हालांकि उनमें यही बात तो ज़्यादा है कि वह दौलतमन्द हैं और उनसे और उसके असर से चन्दा मिलता है) तो हमारी बुनयादी बीमारी है--अल्लाह व रसूल के वास्ते से और उनकी तरफ़ से कहने वालों की न सुनना और न मानना।"

इसी सिलसिले में फ़रमाया-"मैं अब मेवात में यह बात पैदा करना चाहता हूँ कि वह अपने झगड़ों का फ़ैसला अल्लाह व रसूल से तअल्लुक़ रखने वालों से और शरीअत के मुताबिक करायें और उनका जज़्बा यह हो कि अल्लाह व रसूल से तअल्लुक़ रखने वालों के फ़ैसले से अगर आधा भी मिले तो वह सरासर रहमत और बरकत है। और शरीअत के ख़िलाफ़ फ़ैसले करने वाले सारा भी दिलवायें तो वह सरासर वबाल और बे बरकत है।"

फ़रमाया-कुरआन मजीद की आयत

فَلَا وَرَبِّكَ لَا يُؤْمِنُونَ حَتَّىٰ يُحَكِّمُوكَ فِيمَا
شَجَرَ بَيْنَهُمْ ثُمَّ لَا يَجِدُوا فِي أَنفُسِهِمْ
حَرَجًا مِّمَّا قَضَيْتَ وَيُسَلِّمُوا تَسْلِيمًا

का मुददआ यही है लेकिन यह बात एक दम पैदा नहीं हो सकती, बल्कि इसकी सूरत यह है कि पहले उनमें अल्लाह व रसूल की इताआत और शरीअत के अहकाम की पैरवी का शौक़ पैदा किया जाय और उस चीज़ को उनकी तबिअतों

पर ग़ालिब किया जाय और फिर हिकमत और धीरे–धीरे यह बात उनमें पैदा की जाय कि अल्लाह व रसूल की इताअत की अमली सूरत यही है कि अल्लाह व रसूल से सही तअल्लुक़ रखने वाले दीन की जो बातें बतायें उनको इज़्ज़त से माना जाय, और ज़ौक़ व शौक़ से उन पर अमल किया जाय। यही तरीक़ा ज़िन्दगियों के रुख़ को पलटने का है।

[131]

फ़रमाया-मेरे नज़दीक असली दीन यह है कि इस आलम[1] के अस्बाब को अल्लाह तआला के अमरे तकवीनी का परदा समझने लगे, और यक़ीन करने लगे कि इस परदे में करने वाला कोई और है और उसका काम और हुक्म असली सबब है। गोया बजाय ज़ाहरी असबाब के अल्लाह तआला के ग़ैबी महो को असली समझने लगे (और ज़ाहरी असबाब में कोशिश करने से भी ज़्यादा कोशिश इसकी करे कि अल्लाह तआला मुझसे राज़ी होकर मेरा काम पूरा कर दे)।

फ़रमाया-कुरआन मजीद की आयत "وَمَن يَتَّقِ اللَّهَ يَجْعَل لَّهُ مَخْرَجًا وَيَرْزُقْهُ مِنْ حَيْثُ لَا يَحْتَسِبُ" में ग़ौर करो।

[132]

पंजाब के एक दीनदार मुसलमान का ज़िक्र करते हुये फ़रमाया :– "वह जब पहली दफ़ा यहां आये तो इत्तिफ़ाक़ से मैं उस वक़्त इब्ने माजा शरीफ़ का सबक़ पढ़ा रहा था,

1. दुनिया

उन्होंने सलाम किया, मैंने हदीस के दर्स में मशगूलियत की वजह से जवाब नहीं दिया। फिर वह वहीं बैठ गये और थोड़ी देर के बाद (सबक़ ही के दौरान में) उन्होंने कहा कि मैं फ़लां जगह से आया हूँ। मैंने उसका भी कोई जवाब नहीं दिया। कुछ देर बाद वह उठ कर चलने लगे। अब मैंने उनसे पूछा कि आप क्यों आये थे? उन्होंने कहा "ज़ियारत के लिये" मैंने कहा जिस "ज़ियारत" की हदीसों में तरग़ीब और फ़ज़ीलत आई है वह यह नहीं है कि किसी की सिर्फ़ सूरत देख ली जाय तो यह ऐसी ही है जैसे कि किसी की तस्वीर देख ली—शरई ज़ियारत यह है कि उसकी बात पूछी जाय, उसकी सुनी जाय। और आपने तो न अपनी कुछ कही और न मेरी कुछ सुनी—उन्होंने कहा क्या मैं ठहरूँ? – मैंने कहा जरुर – चुनान्चे वह ठहर गये और फिर जब उन्होंने मेरी बात को सुना और समझा और यहां के काम को देखा तो अपने बड़े भाई .... को बुलाया—अगर मैं उसी वक़्त उसी तौर पर थोड़ी बात उनसे कर लेता तो जो कुछ बाद में हुआ कुछ भी न होता और वह बस "ज़ियारत" ही करके चले जाते।

फ़रमाया-ज़माने के बदलने से दीनी इस्तिलाहात के माने भी बदल गये और उनकी रुह निकल गई। दीन में "मुस्लिम की मुस्लिम से मुलाक़ात" की फ़ज़ीलत इस लिये है कि उसमें दीन की बातें हों। जिस मुलाक़ात में दीन का कोई ज़िक्र न हो वह बेरूह है।

[133]

फ़रमाया-हमारे नज़दीक इसलाह की तरतीब यूं है कि

(कलम-ए-तय्यिबा के ज़रीये ईमानी मुआहिदों को ताज़ा करने के बाद) सबसे पहले नमाज़ों की दुरुस्ती और पूरी होने की फ़िक्र की जाय, नमाज़ की बरकात बाक़ी पूरी ज़िन्दगी को सुधारेंगी। नमाज़ ही के सलाह ओर कमाल से बाक़ी ज़िन्दगी पर सलाहियत और कमाल का फ़ैज़ान होता है।[1]

[134]

फ़रमाया-हमारी इस दीनी दावत में काम करने वाले सब लोगों को यह बात अच्छी तरह समझा देनी चाहिये कि तब्लीग़ी जमाअतों के निकलने का मक़सद सिर्फ़ दूसरों को पहुंचाना और बताना ही नहीं बल्कि इस ज़रीये से अपनी इसलाह और अपनी तालीम व तरबियत भी मक़सूद है, इसलिये निकलने के ज़माने में इल्म और ज़िक्र में मशग़ूलियत का बहुत ज़्यादा एहतिमाम किया जाय। दीन के इल्म और अल्लाह के ज़िक्र के एहतिमाम के बग़ैर निकलना कुछ भी नहीं है – फिर यह भी ज़रुरी है कि इल्म व ज़िक्र में यह मशग़ूलियत इस राह के अपने बड़ों से सम्बन्ध रखते हुये और उनकी हिदायत व निगरानी में हो। अम्बिया अलैहिमुस्सलाम का इल्म व ज़िक्र अल्लाह तआला के ज़ेरे हिदायत था और सहाबा किराम हुज़ूर सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम पूरी-पूरी निगरानी फ़रमाते थे। इसी तरह हर ज़माने के लोगों ने अपने बड़ों से इल्म व ज़िक्र लिया ओर उनकी निगरानी और रहनुमाई में पूरी तरह सीखा। ऐसे ही आज भी हम अपने बड़ों की निगरानी के मुहताज हैं, वरना शैतान के जाल में फंस जाने का बड़ा डर है।

---

१. इस की कुछ तफ़सील मेरी किताब "नमाज़ की हक़ीक़त" से मालूम हो सकती है--मन्ज़ूर नोमानी।

क़िस्त नम्बर-9

[135]

फ़रमाया-हमारी यह तबलीग़ी तहरीक, दीनी तालीम व तरबियत फैलाने और दीनी ज़िन्दगी को आम करने की तहरीक है। और इसके जो उसूल हैं बस उनकी की रिआयत और देख–भाल में उसकी कामयाबी का राज़ छुपा हुआ है। इन उसूलों में से एक अहम उसूल यह है कि मुसलमानों के जिस तबक़े का जो हक़ अल्लाह तआला ने रखा है उसको अदा करते हुये इस दावत को उसके सामने पेश किया जाय।

मुसलमानों के तीन तबक़े हैं :–

1 – पिछड़ा हुआ 2 – इज़्ज़त वाला 3 – उलमा-ए–दीन इन सब के साथ जो मामला होना चाहिये उसको इस हदीस में बताया गया है

مَنْ لَّمْ يَرْحَمْ صَغِيْرَنَا وَلَمْ يُوَقِّرْ كَبِيْرَنَا وَلَمْ يُبَجِّلْ عَلِمَائَنَا فَلَيْسَ مِنَّا ـ

यानी क़ौम में जो छोटे हों उनका हक़ (रहम व ख़िदमत) और जो इज़्ज़त वाले व शोहरत वाले हों उनका हक़ (इज़्ज़त) उलमा–ए–दीन का हक़ (ताज़ीम) अदा करके उनको यह दावत दी जाय।

وَأْتُوا الْبُيُوتَ مِنْ أَبْوَابِهَا

[136]

दिल्ली के एक ताजिर एक तब्लीग़ी जमाअत के साथ काम करके सिंध से वापस आये थे, वहाँ के काम की रिपोर्ट उनसे सुनकर हज़रत ने फ़रमायाः—

"दोस्तो! हमारा यह काम (इसलाही व तब्लीग़ी कोशिश) एक तरह का तसख़ीर का अमल है (यानी जो कोई इस काम में लगेगा और उसको अपनी धुन बना लेगा अल्लाह तआला उसके काम बनाता रहेगा)

"مَنْ كَانَ لِلّٰهِ كَانَ اللّٰهُ لَهٗ"

अगर तुम अल्लाह के काम में लगोगे तो ज़मीन व आसमान और फ़िज़ा की हवायें तुम्हारे काम अनजाम देंगी—तुम अल्लाह के काम में घर और कारोबार छोड़ के निकले थे, अब आंखों से देख लेना कि तुम्हारे कारोबार में कितनी बरकत होती है—अल्लाह की मदद करके जो उसकी मदद व रहमत की उम्मीद न रखे वह गुनहागार और बेनसीब है।"

मुरत्तिब अर्ज़ करता है कि आख़िरी जुमला आपने ऐसे अन्दाज़ और इतने जोश से कहा कि मजलिस में हाज़िर रहने वालों के दिल हिल गये।

[137]

फ़रमाया-हमारे इस काम की सही तरतीब तो यही है कि पहले क़रीब-क़रीब जाया जाय और अपने माहौल में काम करते हुये आगे बढ़ा जाय। जैसे यहां से जमाअतें पहले करनाल, पानीपत वग़ैरा जायें, फिर वहां से पंजाब और रियासत बहावलपुर के इलाक़ों में काम करती हुई सिंध जायें-लेकिन कभी-कभी काम करने वालों में पक्का इरादा और काम की पुख़्तगी पैदा करने के लिये शुरु में दूर-दूर भेज दिया जाता है-इस वक़्त सिन्ध, बम्बई वग़ैरा जमाअतें भेजने से यही मक़सद है, इन लम्बे सफ़रों से पक्का इरादा और काम का इश्क़ पैदा होगा।

[138]

फ़रमाया-हमारे इस काम में फैलाव से ज़्यादा रुसूख़ (पहुंच) अहम है लेकिन इस काम का तरीक़ा ऐसा है कि रुसूख़ के साथ ही फैलाव भी होता जायेगा क्योंकि रुसूख़ बग़ैर इसके पैदा ही नहीं होगा कि इस दावत को लेकर शहरों-शहरों और मुलकों फिरा जाय।

[139]

एक नियाज़मन्द से (जिनको मौलाना के तब्लीग़ी काम से भी तअल्लुक़ था और इसके अलावा किताबें और मज़मून वग़ैरह लिखना उनका ख़ास काम था) एक दिन फ़रमायाः-

"मैं अब तक इसको पसन्द नहीं करता था कि इस तब्लीग़ी काम के सिलसिले में कुछ ज़्यादा लिखा पढ़ा जाय और तहरीर के ज़रीये इसकी दावत दी जाय, बल्कि मैं इसको मना करता रहा—लेकिन अब मैं कहता हूं कि लिखा जाय और तुम भी खूब लिखो। मगर यहां के फ़लां–फ़लां काम करने वालों को मेरी यह बात पहुंचाकर उनकी राय भी ले लो (चुनान्चे उन नामज़द हज़रात को हज़रत मौलना की यह बात पहुंचाकर मशवरा तलब किया गया, उन साहिबान ने अपनी यह राय ज़ाहिर की कि इस बारे में अब तक जो तरीक़ा रहा है वही अब भी रहे। हमारे नज़दीक यही बेहतर है) – हज़रत मौलाना को जब उन हज़रात की यह राय पहुंचाई गई तो फ़रमाया।

पहले हम बिल्कुल कस–म–पुरसी[1] की हालत में थे, कोई हमारी बात सुनता नहीं था और किसी की समझ में हमारी बात आती नहीं थी, उस वक़्त यही ज़रुरी था कि हम खुद ही चल फिर कर लोगों में तलब पैदा करें और अमल से अपनी बात समझायें। उस वक़्त अगर तहरीर के ज़रीये आम दावत दी जाती तो लोग कुछ का कुछ समझते और अपने समझने के मुताबिक़ ही राय क़ायम करते, और अगर बात कुछ दिल को लगती तो अपनी समझ के मुताबिक़ कुछ सीधी कुछ उल्टी उसके काम की शक्ल बनाते और फिर जब नतीजे ग़लत निकलते तो हमारी स्कीम को ख़राब कहते।

1. ऐसी हालत जिसमें कोई पूछने वाला न हो।

इसलिये हम यह बेहतर नहीं समझते कि लोगों के पास तहरीर के ज़रीये हमारी दावत पहुंचे—लेकिन अल्लाह तआला के फ़ज़्ल व करम और उसकी मदद से अब हालात बदल चुके है, हमारी बहुत सी जमाअतें मुल्क के चारों तरफ़ निकल कर काम का तरीक़ा दिखला चुकी हैं, और अब लोग हमारे काम के तालिब बनकर खुद हमारे पास आते हैं, और अल्लाह तआला ने हमको इतने आदमी दे दिये हैं कि अगर अलग–अलग सिमतों में तलब (मांग) पैदा हो, और काम सिखाने के लिये जमाअतों की ज़रुरत हो तो जमाअतें भेजी जा सकती हैं—तो अब इन हालात में भी कस–मपुरसी वाले शुरु ज़माने ही के काम के तरीक़े के हर–हर हिस्से पर जमे रहना ठीक नहीं है इस लिये मैं कहता हूं कि तहरीर के ज़रीये भी दावत देनी चाहिये।

[140]

फ़रमाया-अब यह कहना छोड़ दो कि तीन दिन दो या पांच दिन दो, या सात दिन दो। बस यह कहो कि रास्ता यह है, जो जितना करेगा उतना पावेगा। इसकी कोई हद और कोई सिरा नहीं हैं। रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम का काम सब नबियों से आगे है। और हज़रत अबूबकर रज़ि. की एक रात और एक दिन के काम को हज़रत उमर रज़ि. नहीं पा सके, फिर इसकी हद ही क्या है, यह तो सोने चाँदी की खान है, जितना खोदोगे उतना निकालोगे।"

[141]

माद्दी मुनाफ़े के लिये इस्लाम के दुश्मनों के काम का ज़रीआ बनने वाले मुसलमानों का ज़िक्र करते हुये फ़रमाया :–

"अगर तुम उनमें शिकम परस्ती (पेट पूजा) और ग़रज़ परस्ती के बजाय खुदा परस्ती का जज़बा पैदा कर सकोगे। तो फिर वह पेट और दूसरी ग़रज़ों की ख़ातिर दुश्मनों के काम का ज़रीआ क्यों बनेंगे, जज़बात ओर दिल का रुख़ बदले बग़ैर ज़िन्दगी के काम बदलवाने की कोशिश ग़लत है, सही तरीक़ा यही है कि लोगों के दिलों को अल्लाह की तरफ़ फेर दो फिर उनकी पूरी ज़िन्दगी अल्लाह के हुक्मों के मातहत हो जायेगी। ला इला–ह इल्लल्लाह का यही मक़सद है, और हमारी तहरीक की यही बुनयाद है।"

[142]

एक दिन हज़रत ने शायद यह बयान फ़रमाते हुये कि हमारे काम का बुनयादी उसूल यह है कि लोगों में पहले ईमान यानी अल्लाह व रसूल की बातों पर हक़ीक़ी यक़ीन और दीन की क़दर पैदा करने की कोशिश की जाय। इसके बग़ैर दीन के तफ़सीली अहकाम पेश करना सही नहीं है। बल्कि इससे लोगों के अन्दर और ढिटाई पैदा होगी। एक तालिबे इल्म का क़िस्सा इस तरह बयान फ़रमाया :–

"किसी तालिबे इल्म को उनके बुज़ुर्ग उस्ताद ने यह यक़ीन दिला रखा था कि दुनिया में सबसे ज़्यादा क़ीमती चीज़ दीन का इल्म है और उसका एक–एक मसअला हज़ारों

लाखों रुपयों से ज़्यादा क़ीमती है। एक दिन उस तालिबे इल्म को अपना टूटा हुआ जूता गठवाने की ज़रुरत पड़ी, वह चमार के पास गया, जब मज़दूरी की बात चीत हुई तो उस तालिबे इल्म ने कहा कि मैं तुझको दीन का एक मसअला बतला दूंगा। उसने पहले तो मज़ाक़ समझा लेकिन जब उसे अन्दाज़ा हुआ कि यह मज़ाक़ नहीं कर रहा है तो उसने अपनी दुकान से उठा दिया—वह अपने उस्ताद के पास आया और कहा कि आप तो कहते थे कि दीन का एक–एक मसअला हज़ारों लाखों से ज़्यादा क़ीमत का होता है और चमार तो उसके बदले जूता गांठने पर भी तय्यार न हुआ। उन बुज़ुर्ग ने (जो उसे शहर के मशहूर शेख़ और मरज–ए–ख़लायक़[1] थे) तालिबे इल्म को एक हीरा दिया और उससे कहा कि तरकारी बाज़ार में जाकर इसकी क़ीमत जचवाओं। वह पहले एक बेर वाली के पास गया और उससे पूछा कि यह पत्थर तू कितने में लेगी? उसने कहा कि यह मेरे किस काम का है। छटांक भर का भी तो नहीं कि छटंकी बनालूं, ख़ैर अगर तू देवे ही है तो पांच बेर इसके बदले में तुझे दे दूंगी मेरा बच्चा इससे खेल लिया करेगा। उसके बाद एक दूसरी बेर वाली से उन्होंने बात की, उसे भी यही कहा कि यह मेरे किसी काम का नहीं है।

यह अपने उस्ताद के पास वापस आये और बतलाया कि वहां तो इसको बेकार बतलाया गया और एक बेर वाली मुश्किल से पांच बेरों के बदले लेने पर तय्यार हुई।

---

1. जिसकी तरफ़ सारी मख़्लूक रूजू करें।

उन्होंने कहा कि अब इसको लेकर जौहरी बाज़ार जाओ और वहां जौहरियों से कीमत जचवाओ, मगर देना किसी को नहीं।

यह गये और एक जौहरी की दुकान पर जाकर उन्होंने वह हीरा दिखाया, दुकानदार ने उस तालिबे इल्म की सूरत देखकर पहले तो उसको चोर समझा लेकिन जब यह मालूम हुआ कि यह फ़ला बुज़ुर्ग का भेजा हुआ है तो कहा यह हीरा हम नहीं ख़रीद सकते इसको तो कोई बादशाह ही ख़रीद सकता है--उन्होंने आकर अपने उस्ताद को इसकी ख़बर दी।

उन्होंने कहा कि जिस तरह बेरी वाली इस हीरे की क़ीमत को नहीं जानती थी ओर इस लिए वह एक पैसे में भी उसको लेने के लिये तय्यार नहीं हुई इसी तरह वह चमार भी नहीं जानता था कि दीन के मसअले की क्या क़ीमत होती है। ग़लती तुम्हारी है कि तुमने नाक़दरदान को क़दरदान समझ लिया।''

इसके बाद इसी सिलसिले में दीन की क़दर जानने वाले एक बादशाह का वाक़ेआ इस तरह बयान फ़रमाया।

''एक दीनदार और दीन के क़दरदान बादशाह ने अपना लड़का एक मौलवी साहब के हवाले किया कि इसको दीन का इल्म पढ़ाओ। इत्तिफ़ाक़ से वह लड़का बड़ा ही बेसमझ था। मौलवी साहब ने बार--बार बादशाह को ख़बर दी कि यह पढ़ने के क़ाबिल नहीं है, लेकिन बादशाह का हुक्म यही आता रहा कि इसकी बिल्कुल परवाह न करो, अगर वह अपनी

कम समझी की वजह से इल्म हासिल नहीं कर सकता है तो तुम उबूर[1] ही करादो, चुनान्चे बस उबूर ही होता रहा। जब यह उबूर पूरा हो गया तो बादशाह ने बड़ी खुशी मनाई और लड़के से फ़रमाइश की कि दीन की कोई बात बयान करो। उसने कहा, मुझे तो कुछ याद नहीं। बादशाह ने कहा कि जो भी मसअला तुम्हें याद हो वही बयान करो, लड़के ने उस वक़्त हैज़[2] के मुतअल्लिक़ एक मसअला बयान किया। बादशाह ने मजलिस में कहा कि अगर मेरी सारी हुकूमत ख़र्च होकर भी तुम्हें सिर्फ़ यही एक मसअला आ जाता तो भी नफ़ा ही नफ़ा था।

भाइयो! लोगों से दीन पर अमल कराने के लिये पहले उनमें हक़ीक़ी ईमान, आख़िरत की फ़िक्र और दीन की क़दर पैदा करो। अल्लाह का इनआम बहुत है मगर उसके यहाँ ग़ैरत भी हे। वह नाक़दरों को नहीं देता–तुम भी अपने बड़ों से दीन को क़दर के साथ लो–और इस क़दर का तक़ाज़ा यह भी है कि उनको अपना बहुत बड़ा मोहसिन समझो और पूरी तरह उनकी तअज़ीम करो। यही मन्शा है उस हदीस का जिसमें फ़रमाया गया है।

"مَنْ لَّمْ يَشْكُرِ النَّاسَ لَمْ يَشْكُرِ اللّٰهَ"

(जिसने अपने मोहसिन आदमियों का शुक्र अदा न किया उसने अल्लाह का भी शुक्र अदा नहीं किया)

---

1. सिर्फ़ पढ़ा देना 2. औरतों की माहवारी

[143]

इसी सिलसिले में फ़रमाया-इस सिलसिले का एक उसूल यह है कि आज़ाद रवी और खुद राई[1] न हो, बल्कि अपने को उन बड़ों के मशवरों का पाबन्द रखो जिनपर दीन के बारे में उन अकाबिर मरहूमीन ने भरोसा जाहिर किया। जिनका अल्लाह के साथ ख़ास तअल्लुक़ मालूम व मुसल्लम[2] है। रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम के बाद सहाबा-ए-किराम रज़ि. का आम पैमाना यही था कि वह उनही अकाबिर पर ज़्यादा भरोसा करते थे जिन पर हुज़ूर सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ख़ास भरोसा फ़रमाते थे। और फिर बाद में वह हज़रात ज़्यादा भरोसे के क़ाबिल समझे गये जिनपर हज़रत अबूबकर और हज़रत उमर रज़ियल्लाहु अनहुमा ने भरोसा फ़रमाया था। दीन में भरोसे के लिये बहुत तयक़्कुज़[3] के साथ इन्तिख़ाब (चुनाव) ज़रूरी है वरना बड़ी गुमराहियों का भी ख़तरा है।

[144]

फ़रमाया-अकबर की गुमराही की ख़ास वजह यही थी कि शुरू में उसने उलमा पर बहुत भरोसा किया, और यहां तक किया कि अपनी लगाम ही मजलिसे उलमा के हाथ में दे दी, और उलमा के इन्तिख़ाब की सलाहियत व क़ाबलियत थी नहीं। नतीजा यह हुआ कि दुनिया के चाहने वालों का जमघटा हो गया, जब अकबर को उनकी बद नियती और

---

1. आज़ाद तबिअत और मनमानी करना।
2. जाना और माना हुआ 3. होश्यारी और बेदारी

ग़रज़ परस्ती और दुनिया तल्बी का तजुर्बा हुआ तो वह उलमा से सख़्त नफ़रत करने लगा और फिर तो बात यहाँ तक पहुंच गई कि उलमा से उसने पूरे तौर से परहेज़ एख़्तियार कर लिया और दूसरे मज़हबों के पेशवा उस पर क़ाबू पा गये, फिर इस्लाम की जगह "दीने इलाही" बनने लगा।[1]

[145]

फ़रमाया-मेरी इस बीमारी और कमज़ोरी की वजह से उलमा और हकीमों का मुस्तक़िल फ़ैसला है कि मैं बातचीत बिल्कुल न करूं, यहाँ तक कि सलाम व मुसाफ़हा भी न करूं। मैं इस फ़ैसले की ख़िलाफ़ वर्ज़ी सिर्फ़ इस दीनी फ़रीज़े (इस्लाह व तब्लीग़) को ज़िन्दा रखने के लिये करता हूं, जिसके मुतअल्लिक़ मुझे मालूम है कि अगर मैं उसको न करूं तो फिर यह फ़रीज़ा इस वक़्त ज़िन्दा न हो सकेगा। सूर–ए–तौबह की इस आयत से मैंने यह समझा है :–

"مَا كَانَ لِأَهْلِ الْمَدِينَةِ وَمَنْ حَوْلَهُمْ مِّنَ الْأَعْرَابِ أَنْ يَتَخَلَّفُوا عَنْ رَّسُولِ اللّٰهِ وَلَا يَرْغَبُوا بِأَنْفُسِهِمْ عَنْ نَّفْسِهٖ ط

इस आयत से मालूम होता है कि अगर किसी वक़्त दीन

---

1. इमाम रब्बानी हज़रत मुजद्दिद अल्फ़े सानी रह. ने भी अपने बाज़ ख़तों में बिल्कुल यही चीज़ बयान फ़रमाई है और उलमाए दुनिया ही को उसकी गुमराही की वजह बतलाई है।

का काम कुछ लोगों पर मौकूफ़[1] हो तो फिर उनको अपनी जान की परवाह करना जायज़ नहीं।

[146]

फ़रमाया-आम तौर से काम करने वाले लोग बड़े आदमियों और नुमायां हस्तियों के पीछे लगते हैं, और अल्लाह के ग़रीब और ख़स्ता हाल बन्दे अगर खुद भी आ जायें तो उनकी तरफ़ ज़्यादा मुतवज्जेह नहीं होते। यह माद्दियत है। खूब समझ लो, जो खुद बखुद तुम्हारे पास आ गया वह अल्लाह का दिया हुआ और उसका भेजा हुआ है, और जिसके पीछे लग के तुम उसे लाये वह तुम्हारी कमाई है, जो अल्लाह की ख़ालिस अता हो उसकी क़दर अपनी कमाई से ज़्यादा होनी चाहिये। यह ख़राब हाल ग़रीब मेवाती जो यहाँ पड़े रहते हैं उनकी क़दर करो। ज़रा सोचो तो रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने दुआ की थी:--

اَللّٰهُمَّ اَحْيِنِيْ مِسْكِيْنًا وَّاَمِتْنِيْ مِسْكِيْنًا
وَاحْشُرْنِيْ فِيْ زُمْرَةِ الْمَسَاكِيْنَ

(ऐ अल्लाह! मुझे मिस्की[2] की हालत में ज़िन्दा रख और मिस्कीनी ही की हालत में मुझे मौत दे और क़यामत के रोज़ ग़रीबों की जमाअत में मुझे उठा।)

---

1. आश्रित
2. ग़रीबी और कमज़ोरी

फ़रमाया-हज़रत गंगोही रहमतुल्लाह अलैह उस ज़माने के कुतुबे इरशाद और मुजद्दिद थे, लेकिन मुजद्दिद के लिये ज़रूरी नहीं है कि सारा तजदीदी काम उसी के हाथ पर ज़ाहिर हो, बल्कि उसके आदमियों के ज़रिये जो काम हो वह सब भी बिलवास्ता उसी का है, जिस तरह खुलफ़ा-ए-राशिदीन ख़ास तौर से हज़राते शेख़ैन का काम हक़ीक़त में रसूल सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ही का काम है।

[148]

फ़रमाया-दीन की नेमत जिन ज़रीओं से हम तक पहुंची उनका शुक्र व एतिराफ़ और उनकी मोहब्बत न करना महरुमी है।

"مَنْ لَّمْ يَشْكُرِ النَّاسَ لَمْ يَشْكُرِ اللّٰهَ"

और इसी तरह उनहीं को असल की जगह समझ लेना भी शिर्क और मरदूदियत की वजह है। वह तफ़रीत[1] है ओर यह इफ़रात[2] है, ओर सिराते मुस्तक़ीम[3] इन दोनों के दरमियान है।

[149]

फ़रमाया-अल्लाह तआला ने अपनी ख़ूबियां व आदतें जो कुरआन पाक में बयान की हैं उन पर उसी तरह ईमान रखना चाहिये, किसी का बयान भी अल्लाह के अपने बयान को नहीं

---

1. किसी काम में कमी करना।
2. किसी काम में ज्यादती करना।
3. सीधा रास्ता

पहुंच सकता, खुद रसूलल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम का इरशाद है :-

"اَللّٰھُمَّ لَا نُحْصِیْ ثَنَاءً عَلَیْكَ اَنْتَ كَمَا اَثْنَیْتَ عَلٰی نَفْسِكَ"

[150]

हज़रत गंगोही नव्वरल्लाहु मरक़दहु के नवासे हज़रत हाफ़िज़ मोहम्मद याकूब साहब गंगोही ज़ियारत व अयादत के लिये तशरीफ़ लाये, उनके साथ उनही के घराने की कोई औरत भी थीं (शायद उनकी लड़की ही थीं) वह भी हज़रत मौलाना की अयादत के लिये तशरीफ़ लाई थीं। हज़रत ने उनको परदे के पीछे कमरे ही में बुलवा लिया। उनको ख़िताब करते हुये जो कुछ उस वक़्त हज़रत ने फ़रमाया था उसे कुछ जुमले लिख लिये गये थे जो नीचे दिये जा रहे हैं :-

फ़रमाया- "مَنْ لَّمْ یَشْکُرِ النَّاسَ لَمْ یَشْکُرِ اللّٰہَ"

मुझे दीन की नेमत आपके घराने से मिली है, मैं आपके घर का गुलाम हूं, गुलाम के पास अगर कोई अच्छी चीज़ आ जाय तो उसे चाहिये कि तोहफ़े में अपने मालिक के सामने पेश कर दे। मुझ गुलाम के पास आप ही के घर से हासिल किया हुआ "विरासते नबूवत" का तोहफ़ा है, इसके सिवा और इससे बेहतर मेरे पास कोई सौग़ात नहीं है जिसे मैं पेश कर सकूँ।

दीन क्या है? हर मौक़े पर अल्लाह के हुकमों को तलाश करते हुये और उनका ध्यान करते हुये, और अपने नफ़्स के तक़ाज़े की मिलावट से बचते हुये उनके पूरा करने में लगे रहना, और अल्लाह के हुकमों की तलाश और ध्यान के बग़ैर कामों में लगना ही दुनिया है।

इस तरीक़े से कुछ रोज़ में वह बात हासिल हो सकती है जो दूसरे तरीक़ो से 25 साल में भी हासिल नहीं होती।

मैं औरतों से कहता हूँ कि दीनी काम में तुम अपने घर वालों की मददगार बन जाओ। उन्हें इत्मिनान के साथ दीन के कामों में लगने का मौक़ा दे दो, और घरेलू कामों का उनका बोझ हलका कर दो, ताकि वह बेफ़िक्र होकर दीन का काम करें। अगर औरतें ऐसा न करेंगी तो "हिबालतुश्शैतान"[1] हो जायेंगी।

दीन की हक़ीक़त है जज़्बात को अल्लाह के हुक्मों का पाबन्द करना, सिर्फ दीनीं मसायल के जानने का नाम दीन नहीं है—यहूदी उलमा दीन की बातें और शरीअत के मसायल बहुत जानते थे लेकिन अपने जज़्बात को उन्होंने अल्लाह के हुक्मों का पाबन्द नहीं किया था, इस लिये मग़ज़ूब[2] और मरदूद हो गये।

इसी बातचीत के दौरान में किसी ख़ास मामले के मुतअल्लिक़ हजरत से दुआ की दरख़्वास्त की गई तो फ़रमाया:—

---

१. यानी शैतान के जाल और फन्दे जिनमें फांस के वह आदमियों को दीन की राह से रोकता है। यह मज़मून एक हदीस का है। — नोमानी

जो कोई अल्लाह का तक़्वा एख़्तियार करे, यानी जज़्बात को अल्लाह के हुक्मों के ताबे कर दे तो फिर अल्लाह तआला उसकी तमाम मुश्किलें ग़ैब के परदे से हल करते हैं और ऐसे तरीक़ों से उसकी मदद करते हैं कि ख़ुद उसे वहम व गुमान भी नहीं होता।

"مَنْ يَّتَّقِ اللّٰهَ يَجْعَلْ لَّهٗ مَخْرَجًا وَّيَرْزُقْهُ مِنْ حَيْثُ لَا يَحْتَسِبُ"

अल्लाह की ख़ास मदद हासिल करने की यक़ीनी और शर्तिया तरकीब यह है कि उसके दीन की मदद की जाय।

"اِنْ تَنْصُرُوا اللّٰهَ يَنْصُرْكُمْ"

अगर तुम अल्लाह के दीन की मदद करो तो हलाक करने वाली चीज़े तुम्हारे लिये ज़िन्दगी और आराम का सामान बन जायें। हज़रत इब्राहीम अलैहिस्सलाम ने जी जान से अल्लाह के दीन की मदद की तो अल्लाह ने आग को उनके हक़ में गुलज़ार बना दिया। ऐसे ही हज़रत मूसा अलैहिस्सलाम और उनकी क़ौम को उस दरिया ने जिसकी ख़ास्सियत डुबोना है सलामती के साथ साहिल तक पहुंचा दिया।

[151]

आज बुधवार 2 जमादिलऊला 1363 हिजरी को रात में दारूल उलूम देवबन्द के तलबा की एक जमाअत आई है। रात इशा के वक़्त हज़रत को दस्तों का एक दौरा हो गया था जिससे कमज़ोरी इन्तिहा को पहुंची हुई है, बात करने की ताक़त नहीं है। फ़ज्र की नमाज़ के बाद इस नाचीज़ मुरत्तिब को बुलाया और इरशाद फ़रमायाः–

''कान बिल्कुल मेरे होंठो से लगा दो और सुनो! यह तलबा अल्लाह की अमानत और उसका अतिया हैं। इसकी क़दर और इस नेमत का शुक्र यह है कि इनका वक़्त इनकी हैसियत के मुनासिब पूरे एहतिमाम से काम में लगाया जाय और ज़रा सा वक़्त भी बेकार न जाय, यह बहुत कम वक़्त ले के आये हैं, पहले मेरी यह दो तीन बातें उन्हें पहुंचा दो।

(1) अपने तमाम उस्तादों की इज़्ज़त और उन सब का अदब व एहतिराम आपका ख़ास और बड़ा फ़र्ज़ है, आपको उनकी ऐसी इज़्ज़त करनी चाहिये जैसी कि दीन के इमामों की की जाती है, वह आप लोगों के लिये नबवी इल्म के हासिल करने का ज़रीआ हैं और जिस शख़्स ने किसी को दीन की एक भी बात बतलाई वह उसका मौला हो जाता है। फिर दीन के इल्म के मुस्तक़िल उस्तादों का जो हक़ है वह समझा जा सकता है। बल्कि अगर उनके दरमियान

कुछ निज़ाअता[1] भी हो तब भी अदब व इज़्ज़त का तअल्लुक़ सबके साथ बराबर रहना चाहिये, चाहे मोहब्बत व अक़ीदत किसी के साथ कम और किसी के साथ ज़्यादा हो लेकिन ताज़ीम में फ़र्क़ न आना चाहिये और दिल में उनकी तरफ़ से बुराई न आना चाहिये। कुरआन मजीद ने तो हर मोमिन का यह हक़ बताया है कि उनकी तरफ़ से अपने दिलों के साफ़ रहने की अल्लाह तआला से दुआ की जाय करे फ़रमायाः—

وَلَا تَجْعَلْ فِيْ قُلُوْبِنَا غِلًّا لِّلَّذِيْنَ اٰمَنُوْا

(और न रख हमारे दिलों में ईमान वालों का कीना)

और रसूलल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम फ़रमाया करते थे :—

لَا يُبَلِّغُنِيْ اَحَدٌ عَنْ اَحَدٍ شَيْئًا فَاِنِّيْ اُحِبُّ اَنْ اَخْرُجَ اِلَيْكُمْ وَاَنَا سَلِيْمُ الصَّدْرِ

(तुम में से कोई मुझे एक दूसरे की न पहुंचाया करे, मैं चाहता हूँ कि मैं जब तुम्हारे पास आऊँ तो मेरा सीना सब की तरफ़ से साफ़ हो)

और बाज़ रिवायात से मालूम होता है कि आपने अपने इन्तिक़ाल की दुआ उस वक़्त मांगी जबकि उम्मत बहुत

---

1. झगड़े

फैलने लगी, और आपको ख़तरा हुआ कि कहीं ना समझी की वजह से किसी के दिल में मेरी तरफ़ से कोई मैल न आ जाय और फिर वह बरबाद हो जाय।

(इसी सिलसिले में **फ़रमाया:–**) इन चीज़ों का अज्र (यानी बड़ों–छोटों के हुक़ूक़ की रिआयत का अर्ज जिसका वसीअ नाम इसलाह ज़ातुल बैन है) अरकान से कम नहीं है बल्कि ज़्यादा ही है।[1] अरकान की रुकनियत का मतलब यह है कि अल्लाह तआला हमसे जो ज़िन्दगी चाहते हैं वह उन अरकान से पैदा हो सकती है। और इस इसलाह ज़ातुल बैन का तअल्लुक़ बन्दों के हुक़ूक़ से है और अल्लाह तआला तो अपने बन्दों के हक़ में मोहब्बत करने वाला व करम करने वाला और बहुत मेहरबान व रहम करने वाला है। उसके करम से तो माफ़ी ही की ज़्यादा उम्मीद है, लेकिन बन्दे तो ऐसे ही हैं जैसे कि तुम खुद हो, इसलिए उनके हुक़ूक़ की अदायगी का मामला बहुत अहम है, और फिर इस दर्जे में इल्में दीन के उस्तादों के हुक़ूक़ का मामला ज़्यादा नाज़ुक है, तो इन तलबा को मेरा एक पैग़ाम तो यह पहुंचाओ कि अपनी ज़िन्दगी के इस पहलू की इसलाह की यह ख़ास तौर से फ़िक्र करें।

---

1. अबू दाऊद शरीफ़ किताबुल अदब में एक तफ़सीली हदीस इस मज़मून की रिवायत की गई हे कि इस लाह ज़ातुल बैन का दर्जा नमाज़, रोज़ा वग़ैरह इबादात से ज़्यादा है।

(2) और दूसरी बात यह है कि वह हमेशा इस फ़िक्र में लगे रहें और इस फ़िक्र के बोझ के साथ ज़िन्दगी गुज़ारें कि जो कुछ पढ़ा है और जो पढ़ेंगे उसके मुताबिक़ ज़िन्दगी गुज़ारे। इल्मे दीन का यह पहला ज़रूरी हक़ है। दीन कोई फ़न और फ़लसफ़ा नहीं है बल्कि ज़िन्दगी गुज़ारने का वह तरीक़ा है जो अम्बिया अलैहिमुस्सलाम लेकर आये हैं। अल्लाह के रसूल ने "इल्मुन ला यनफ़अ" से (यानी उस इल्म से जो अमल पे न डाले) पनाह मांगी है, और इसके अलावा भी आलिम बेअमल के लिये जो सख़्त सज़ा देने की बईदें कुरआन व हदीस में आई हैं वह आपके इल्म में हैं। यह भी समझ लेना चाहिये कि आलिम की बेअमली नमाज़ न पढ़ना और रोज़ा न रखना, शराब पीना या ज़िना करना नहीं है। यह तो आम लोगों के आम गुनाह हैं, आलिम का गुनाह यह है कि वह इल्म पर अमल न करे और उसका हक़ अदा न करे।

"क़रीबा रा बेश बूद हैरानी"

कुरआन मजीद में अहले किताब उलमा के मुतअल्लिक़ फ़रमाया गया है :–

فَبِمَا نَقْضِهِمْ مِّيْثَاقَهُمْ لَعَنَّاهُمْ وَجَعَلْنَا
قُلُوْبَهُمْ قَاسِيَةً"

(उनके वादा तोड़ने की वजह से हमने उन पर लानत की और उनके दिलों को सख़्त कर दिया)

(3) तीसरी बात उन तलबा से यह कही जाय कि उनका वक़्त बड़ा क़ीमती है और वह बहुत थोड़ा वक़्त लेकर आये हैं, इस लिये उसका एक लमहा भी यहां बेकार न करें, बल्कि यहां के उसूलों के मुताबिक़ तालीम व मुज़ाकिरे के कामों में लगे रहें, पुरानों से बातें करें और उनके साथ रहें और उनही के साथ में शहर (देहली) के अरबी मदरसों में जाकर काम करें।

[152]

देवबन्द से तलबा की जो जमाअत रात आई है पहले तो उसको ऊपर लिखा गया पैग़ाम दिया। उसके बाद जब चाय पीने के लिये मेहमान हज़रात दस्तूर के मुताबिक़ हज़रत के क़रीब आकर बैठे तो हज़रत ने उन तलबा से खुद अपने आप बात करनी चाही और बहुत ही कमज़ोर आवाज़ में फ़रमाया :–

"आप लोग यहां क्यों आये हैं? देवबन्द जैसे बड़े मदरसे के शफ़ीक असातिज़ा, अच्छी शानदार इमारतों वाले इक़ामत ख़ाने और अपना जाना बूझा माहौल छोड़ के आप यहां किस वास्ते आये हैं (फिर खुद ही अपने इस सवाल का यह जवाब दिया)

"इस लिये कि अल्लाह की बातों को फैलाने की कोशिशों में जान देने के शौक़ को ज़िन्दा करें और उसका तरीक़ा सीखें और इसपर अल्लाह तआला की तरफ़ से जो

वादे हैं, यक़ीन के साथ उनसे उम्मीदें लगाते हुये और उसके ग़ैर से बिल्कुल उम्मीदें न लगाते हुये बल्कि ग़ैरों से उम्मीदें खत्म करते हुये काम करना सीखें।

"جَاهِدُوْا فِي اللّٰهِ حَقَّ جِهَادِهٖ هُوَ اجْتَبٰىكُمْ وَمَا جَعَلَ عَلَيْكُمْ فِي الدِّيْنِ مِنْ حَرَجٍ"

फिर इसी सिलसिले में फ़रमाया–

"जितनी ज़रूरत इसकी है कि अल्लाह ही से उम्मीदें रखी जायें, उतनी ही ज़रूरत इस कोशिश की है कि अल्लाह के अलावा ग़ैरों से उम्मीदें न रखी जायें, बल्कि अल्लाह के अलावा से बिल्कुल नज़र अन्दाज़ करके काम करने की मश्क की जाय।

"اِنْ اَجْرِيَ اِلَّا عَلَى اللّٰهِ"

हदीस में है कि जो लोग ग़ैरों से कुछ उम्मीदें रखकर अच्छे काम करेंगे, क़यामत में उनसे कह दिया जायेगा कि जाओ उन्हीं से जाकर अपना अज्र लो।

[153]

इन्हीं तलबा से ख़िताब करते हुए फ़रमाया–

"नमाज़ क़ायम करना सारी ज़िन्दगी को दुरूस्त करने वाली चीज़ है। लेकिन नमाज़ क़ायम करने की तकमील होगी उन खूबियों के पैदा करने से जिनका ज़िक्र नमाज़ के सिलसिले में कुरआन मजीद में अलग–अलग तौर पर किया

गया है, जैसे फ़रमाया गया :–

"قَدْ اَفْلَحَ الْمُؤْمِنُوْنَ الَّذِيْنَ هُمْ فِىْ صَلَاتِهِمْ
خَاشِعُوْنَ ۝"

और सूर–ए–बक़रह के पहले रुकू में

"اَلَّذِيْنَ يُؤْمِنُوْنَ بِالْغَيْبِ وَيُقِيْمُوْنَ الصَّلٰوةَ" الخ

के बाद फ़रमाया गया है

"اُولٰٓئِكَ هُمُ الْمُفْلِحُوْنَ ۝"

इन दोनों आयतों को मिलाने से साफ़ मालूम होता है कि नमाज़ में खुशू भी नमाज़ क़ायम करने में दाख़िल है, और बग़ैर खुशू के नमाज पढ़ने वाले "मुक़ीमीने सलात" नहीं हैं–और नमाज़ों में खुशू पैदा करने की तरकीब व तदबीर की तरफ़ दूसरी आयत में इशारा किया गया है कि अल्लाह तआला के, सामने हाज़िर होने के यक़ीन को ज़्यादा से ज़्यादा बढ़ाया जाय।

"وَاِنَّهَا لَكَبِيْرَةٌ اِلَّا عَلَى الْخَاشِعِيْنَ الَّذِيْنَ
يَظُنُّوْنَ اَنَّهُمْ مُّلٰقُوْا رَبِّهِمْ وَاَنَّهُمْ اِلَيْهِ
رَاجِعُوْنَ ۝"

फ़रमाया–"मुलाक़ू रब्बिहिम" को अख़िरत से मख़सूस करने की कोई वजह नहीं, अल्लाह के बन्दों को नमाज़ की जैसी हालत में जो हुजूरी नसीब होती है वह भी उसकी मिदाक़ है।

[154]

इसी सिलसिले में फ़रमाया–

"قَدْ اَفْلَحَ الْمُؤْمِنُوْنَ"—

और

"اُولٰٓئِكَ هُمُ الْمُفْلِحُوْنَ"

में जिस फ़लाह और कामयाबी का वादा है उसको सिर्फ़ आख़िरत की कामयाबी ही में मुनहसिर करने की कोई वजह नहीं बल्कि दुनिया की कामयाबी व कामरानी भी इसमें दाख़िल है, और मतलब यह है कि जिन लोगों में यह ईमानी खूबियां हों, हमारी गै़बी मदद दुनिया में भी उनका रास्ता साफ़ करने और फ़लाह व कामरानी तक उनको पहुँचाने की ज़िम्मेदार है।

[155]

इसी सिलसिले में फ़रमाया–गै़बी मदद और गै़बी ताक़त जिस चीज़ का नाम है वह पहले से हवाले नहीं की जाती, बल्कि ठीक वक़्त पर साथ करदी जाया करती है, गोया अल्लाह के ख़ज़ाने में जमा है और ईमान व तवक्कुल की शर्त यह है कि उस पर भरोसा अपने हाथ की हासिल की हुई ताक़त से ज़्यादा होना चाहिये।

[156]

इसी सिलसिले में फ़रमाया—

"وَمِمَّا رَزَقْنٰهُمْ يُنْفِقُوْنَ"——

को सिर्फ़ माल व दौलत से मख़सूस करने की कोई वजह नहीं, बल्कि अल्लाह तआला ने ज़ाहिर व बातिन की जो ताक़तें हमको दी हैं मसलन फ़िक्र व राय और हाथ-पाव यह सब भी अल्लाह तआला का इनआम है, और अल्लाह के कामों में और उसके दीन के लिये इन चीज़ों का इस्तेमाल करना भी इसमें शामिल है।

[157]

इन तलबा ही से फ़रमाया—तुम अपनी क़दर व क़ीमत तो समझो, दुनिया भर के ख़ज़ाने भी तुम्हारी क़ीमत नहीं। अल्लाह तआला के सिवा कोई भी तुम्हारी क़ीमत नहीं लगा सकता, तुम अम्बिया अलैहिमुस्सलाम के नायब हो जो सारी दुनिया से कह देते हैं

"اِنْ اَجْرِىَ اِلَّا عَلَى اللّٰهِ"

तुम्हारा काम यह है कि सबसे उम्मीदों को ख़त्म करते हुए और सिर्फ़ अल्लाह के अज्र पर यक़ीन व भरोसा रखते हुए तवाज़ो और तज़ल्लुल[1] से ईमान वालों की ख़िदमत करो। इसी से अब्दीय्यत[2] की तकमील व तज़ईन होगी।

---

1. अपने को कम और पस्त समझना। 2. बन्दगी

[158]

एक मशहूर दीनी जमाअत के एक अहम काम करने वाले और रहनुमा अयादत और ज़ियारत के लिये तशरीफ़ लाये, हज़रत ने उनसे गुफ़्तगू करते हुये फ़रमाया :–

"हमारे हां हिसाब किताब नहीं रहता, दीनी काम करने वालों को भी हिसाब किताब की ज़रूरत इस लिये हो गई है कि वह भरोसा और इतमीनान बाक़ी नहीं रहा जिस के बाद किसी हिसाब की ज़रूरत नहीं रहती, अगर अपने काम के तरीक़े से वही एतिमाद फिर पैदा कर लिया जाय तो हिसाब किताब में जो वक़्त लगता है वह ख़ालिस दीनी कामों ही के लिये बचा रहे।"

[159]

"हिन्दुस्तान की एक मशहूर सियासी व मज़हबी मजलिस के एक बड़े रहनुमा (जो हिन्दुस्तान के बहुत बड़े और सहर बयान ख़तिब भी हैं) अयादत और ज़ियारत को तशरीफ़ लाये। दो दिन पहले हज़रत पर बहुत सख़्त दौरा पड़ चुका था जिसकी वजह से इस क़दर कमज़ोरी हो गई थी कि अकसर होंठों पर कान रख के बात सुनी जा सकती थी। जब उन साहब के आने की इत्तिला दी गई तो इस नाचीज़ (मुरत्तिबे मलफ़ूज़ात) को बुलाया और इरशाद फ़रमाया कि मुझे इनसे बात करना ज़रूरी है, लेकिन सूरत यह होगी कि अपना कान मेरे मुँह क़रीब कर देना और जो कुछ मैं कहूं वह उनसे तुम कहते जाना चुनान्चे वह साहब जब अन्दर

तशरीफ लाये तो बात शुरू तो मेरे ही ज़रीये से फ़रमाई लेकिन दो तीन मिनट ही बाद अल्लाह तआला ने इतनी ताक़त अता फरयादी कि क़रीबन आधे घण्टे तक मुसलसल तक़रीर फ़रमाते रहे। उस मजलिस के जो इरशादात लिखे जा सके थे वह नीचे लिखे जा रहे हैं :--

फ़रमाया--मुस्लिम का मुस्लिम से मिलना बस इस्लाम को फैलाने के लिये है वरना मुस्लिमों और ग़ैर मुस्लिमों की मुलाक़ातों में क्या फ़र्क़ है? आप यहाँ कुछ दिन रहकर हमारे काम को देखें, इसके बग़ैर हमारी बात का समझ में आना और हमारे मक़सद को पाना मुश्किल है। अस्ल बात यह है कि मोहम्मद सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम वाले तअल्लुक़ात मुरदा हो चुके हैं उनको ज़िन्दा करना है और बस इसी की कोशिशों में मर रहना है।

मैंने शुरू में मदरसा पढ़ाया (यानी मदरसे में दर्स दिया) तो तलबा की भीड़ हुई और अच्छी-अच्छी सलाहियत वाले तलबा कसरत से आने लगे। मैंने सोचा कि इनके साथ मेरी मेहनत का नतीजा इसके सिवा और क्या होगा कि जो लोग आलिम बनने ही के लिये मदरसों में आते हैं मुझसे पढ़ने के बाद भी वह आलिम मोलवी ही बन जायेंगे और फिर इनके काम भी वहीं होंगे जो आज कल आम तौर से इख़्तियार किये जाते हैं। कोई तिब (डाक्टरी) पढ़ कर मतब करेगा, कोई यूनिवर्सिटी का इम्तिहान देकर स्कूल-कालेज में नौकरी करेगा, कोई मदरसे में बैठ कर पढ़ाता ही रहेगा, इस से ज़्यादा और कुछ नहीं होगा यह सोचकर मदरसे में पढ़ाने

से मेरा दिल हट गया। इसके बाद एक वक़्त आया जब मेरे हज़रत ने मुझको इजाज़त देदी थी तो मैंने तालिबीन को ज़िक्र की नसीहत शुरू की, और इधर मेरी तवज्जोह ज़्यादा हुई, अल्लाह का करना, आने वालों पर इतनी जल्दी कैफ़ियात और हालात का उतरना शुरू हुआ और इतनी तेज़ी से हालात में तरक़्क़ी हुई कि खुद मुझे हैरत हुई, और मैं सोचने लगा कि यह क्या हो रहा है और इस काम में लगे रहने का नतीजा क्या निकलेगा? ज़्यादा से ज़्यादा यही कि कुछ अहवाल वाले और ज़िक्र व शग़्ल वाले लोग पैदा हो जायें, फिर लोगों में उनकी शोहरत हो जाय तो कोई मुक़दमा जीतने की दुआ के लिये आये, कोई औलाद के लिये तावीज़ की दरख़्वास्त करे, कोई तिजारत और कारोबार में तरक़्क़ी की दुआ कराये और ज़्यादा से ज़्यादा यह कि उनके ज़रिए भी आगे को कुछ तालिबीन में ज़िक्र का सिलसिला चले, यह सोच कर इधर से भी मेरी तवज्जोह हट गई और मैंने यह तो किया कि अल्लाह तआला ने ज़ाहिर व बातिन की जो ताक़तें अता फ़रमाई हैं उनका सही इस्तेमाल यह है कि उनको उसी काम में लगाया जाय जिसमें हुज़ूर सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने अपनी-अपनी ताक़तें लगाई और वह काम है अल्लाह के बन्दों को और ख़ास कर ग़ाफ़िलों और बेतलबों को अल्लाह की तरफ़ लाना और अल्लाह की बातों को फैलाने के लिये जान को बेक़ीमत करने का रिवाज देना। बस यही हमारी तहरीक है और यही हम सब से कहते है। यह काम अगर होने लगे तो अब से हज़ारों गुने ज़्यादा मदरसे और हज़ारों गुनी ही ज़्यादा ख़ानक़ाहें क़ायम हो जायें, बल्कि हर

मुसलमान मदरसा और ख़ानक़ाह हो जाय और हुज़ूर सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम की लाई हुई नेमत इस आम अन्दाज़ से बटने लगे जो उसकी शान के मुताबिक़ है।

हज़रात! अल्लाह तआला ने आपको एक ताक़त दी है इससे मेरा मतलब बयान व तक़रीर की ताक़त नहीं है बल्कि मेरा मक़सद यह है कि आप एक जमाअत के बड़े और उसके मुताअ[1] हैं, हज़ारों आदमी आपकी बात मानते हैं, आप उनको मुतवज्जेह कीजिये कि हमारे आदमियों के साथ कुछ दिनों रहकर वह हमारे काम को हमसे ओर सीखें और फिर अपने हलक़ों में यह काम करें, इससे इनशाअल्लाह वह बहुत काम के बन जायेंगे।

हज़रात! ईमान के दो बाज़ू हैं, एक अल्लाह व रसूल के दुश्मनों पर ग़िलज़त व शिद्दत और दूसरे अल्लाह व रसूल के मानने वालों और मोहब्बत करने वालों पर शफ़क़त व रहमत, और उनके मुक़ाबले में फरोतनी और ज़िल्लत।

"أَذِلَّةٍ عَلَى الْمُؤْمِنِينَ أَعِزَّةٍ عَلَى الْكَافِرِينَ"
"أَشِدَّاءُ عَلَى الْكُفَّارِ رُحَمَاءُ بَيْنَهُمْ"

ईमान वालों की तरक़्क़ी व परवाज़ के लिये यह दोनों बाज़ू ज़रूरी है, एक बाज़ू से कोई जानवर भी नहीं उड़ सकता।

---

1. जिसकी बात मानी जाय:

इन साहब ने जो हज़रत से अक़ीदत और नियाजमन्दी का भी तअल्लुक़ रखते हैं, हज़रत के इरशादात सुन कर अर्ज़ किया कि जवानी और ताक़त का सारा ज़माना तो दूसरे कामों में ख़र्च हो गया, उस वक़्त किसी बुज़ुर्ग ने न खींचा, अब मैं बूढ़ा हो गया और किसी नये काम की हिम्मत व ताक़त नहीं रही तो हज़रत मुझसे अपना काम लेना चाहते हैं, अब मैं किसी काम का नहीं रहा हूं।

हज़रत ने इरशाद फ़रमाया—अगर हक़ीक़त में आप पहले यह समझते थे कि आप में कुछ ताक़त व कूव्वत है और आप कुछ कर सकते हैं तो उस वक़्त आप अल्लाह के काम के क़ाबिल न थे, और अगर अब आपको यह यक़ीन हो गया है कि आप में कोई कूव्वत व ताक़त नहीं है, और आप कुछ भी नहीं कर सकते हैं तो अब ही आप अल्लाह के काम के क़ाबिल हुये हैं। अल्लाह का काम करने और उसकी मदद के मुस्तहिक़ होने की शर्तों में से यह है कि आदमी अपने आपको बिल्कुल आजिज़ व लाचार समझे, और सिर्फ़ अल्लाह ही को काम बनाने वाला यक़ीन करे, इसके बग़ैर मदद नहीं होती। हदीस पाक में है कि "मैं उन्हीं के साथ हूं जिनके दिल टूटे हुए हैं।"

फ़रमाया—मैं सियासी काम करने वालों का भी शुक्रगुज़ार हूं, उन्होंने गवर्नमेन्ट को अपनी तरफ़ मुतवज्जेह किये रखा जिसकी वजह से मैं इतमिनान से इतने दिनों अपना काम कर सका।

आख़िर में रोख़सत होते वक़्त उन साहब ने दुआ की दरख़्वास्त की तो इस पर फ़रमाया :–

"हज़रत! हर मुसलमान के लिये उसकी नामौजूदगी में दुआ करना हक़ीक़त में अपने लिये दुआ करना है। हदीस में है कि जब कोई मुसलमान अपने किसी मुसलमान भाई के लिये ख़ैर व फ़लाह की कोई दुआ करता है तो अल्लाह के फ़रिश्ते कहते हैं "व–ल–क मिसलु ज़ालि–क" यानी ऐ अल्लाह के बन्दे यही चीज़ अल्लाह तुझे भी दे। पस हर मुसलमान के लिये किसी बेहतरी की दुआ दर हक़ीक़त फ़रिश्तों से अपने लिये दुआ कराने की एक यक़ीनी तदबीर है।"

क़िस्त नम्बर-10

[160]

फ़रमाया - इस दीनी दावत के सिलसिले में हरतबक़े के मुसलमानों से मिलना और उन सब को इस तरफ़ लाने की कोशिश करना ज़रुरी है–मैं अपना एक वक़िआ सुनाता हूं (इसके बाद मौलाना ने एक मशहूर आलिमे दीन के मुतअल्लिक़ जो उस ज़माने के बड़े आलिम और शेखुलहिन्द हज़रत मौलाना महमूद हसन साहब रहमतुल्लाह अलैह के मशहूर शागिरदों में से हैं बताया) कि उन्होंने एक दफ़ा सबके सामने हज़रत मौलाना..........नव्वरल्लाह मरक़दहू के मुतअल्लिक बहुत ही ख़राब और बिल्कुल ही ग़लत कुछ बातें कहीं जिससे मेरा बहुत ही दिल दुखा। और मेरी हालत यह हो गई कि मैं उनकी सूरत नहीं देखना चाहता था.........कुछ दिनों बाद जब मैं इस काम में लगा हूं तो एक दिन मेरे दिल में आया कि उन साहब के मुतअल्लिक़ मेरा यह रवय्या और बर्ताव ठीक नहीं है, आख़िर वह मोमिन व मुस्लिम हैं हज़रत शेखुलहिन्द रहमतुल्लाह अलैह की बरकात भी उनके अन्दर ज़रुर होंगी, कुरआन मजीद के इलमी अनवार भी उनके पास हैं, जिस शख़्स में भलाई के इतने पहलू हों उससे इतनी

दूरी इख़्तियार कर देना खुद अपना नुक़सान करना है, लेहाज़ा खुद मुझे जाकर उनकी ज़ियारत करनी चाहिये और उनके इन दीनी कमालात की वजह से मुझे उनका इकराम करना चाहिये और उनकी जिस बात से मेरा दिल दुखा उसमें यह भी शक है कि यह बातें उनसे किसी दूसरे शख़्स ने इसी तरह कही हों और उनकी ग़लती सिर्फ़ इतनी ही हो कि इनको सच समझ के इस आम मौक़े पर नक़ल कर दिया हो या इसी तरह की कोई और नज्तिहादी ग़लती इस मामले में उनसे हुई हो। बहर हाल यह ग़लती ऐसी नहीं है जिसकी वजह से उनको इस तरह छोड़ देना मेरे लिये दुरुस्त हो।

फ़रमाया - यह बातें मैंने अपने नफ़्स को अकेले में बैठ–बैठ के समझाई। और मेरी इन बातों के जवाब में मेरे नफ़्स ने जो–जो हुज्जतें (दलीलें) पेश कीं मैंने उन सब को दलीलों से रद्द किया और "ज़ियारेत मुस्लिम और इक्रामे मुस्लिम" पर जिन–जिन अज्रों की खुशख़बरियां कुरआन पाक व हदीसों में आई हैं मैने उनको याद किया और अपने नफ़्स को याद दिलाया, और आख़िरकार खुद उनके पास जाने का इरादा कर लिया। फिर मुझे इसमें तरद्दुद हुआ कि मुझे इस वक़्त उनके पास सिर्फ़ शरई ज़ियारत ही की नियत से जाना चाहिये या दीनी दावत पेश करने का इरादा करना चाहिये (यानी इन दोनों सूरतों में से कौन सी ज़्यादा अच्छी और अल्लाह को ज़्यादा महबूब है–आख़िरकार मैंने यह तै किया कि "ज़ियारत" और "दावत" की मुस्तक़िल नियत

करके मुझे उनकी ख़िदमत में हाज़िर होना चाहिये, इसमें इनशाअल्लाह दोनों चीज़ों का पूरा–पूरा सवाब मिलेगा। चुनान्चे मैंने ऐसा ही किया, और यह मुलाक़ात फिर बहुत सी बरकतों और बहुत से फ़ायदों का ज़रीया बनी।

[161]

इसी सिलसिल-ए-कलाम में फ़रमाया-हमारे बाज़ ख़ास हज़रात मेरे इस रवय्ये से नाराज़ हैं कि मैं इस दीनी काम के सिलसिले में हर तरह और हर क़िस्म के लोगों और मुसलमानों के हर गिरोह के आदमियों से मिलता हूं और मिलना चाहता हूं और अपने लोगों से भी उनके साथ मिलने जुलने को कहता हूं। लेकिन मैं अपने हज़रात की इस नाराज़ी को सहना और उनको मजबूर क़रार देते हुये उनको भी इसी तरफ़ लाने की पूरी कोशिश करते रहना शुक्रे वाजिब को एक हिस्सा समझता हूं।

चो हक़ बर तू बाशत तू बर ख़लक़ बाश

इन हज़रात का ख़्याल है कि यह तर्ज़े अमल हमारे हज़रत नव्वरल्लाह मरक़दहू के तरीक़े और मज़ाक़ के ख़िलाफ़ है, लेकिन मेरा कहना यह है कि जिस चीज़ का दीन के लिये नफ़ा पहुंचाने वाला और बहुत फ़ायदे मन्द होना दलीलों और तजुर्बे से मालूम हो गया उसको सिर्फ़ इसलिये इख़्तियार न करना कि हमारे शेख़ ने यह नही किया बड़ी गलती है, शेख़ शेख़ ही तो है, खुदा तो नहीं है।

[162]

फ़रमाया - इस दीनी काम (दीन की तब्लीग़ और उम्मत की इस्लाह की अवामी तहरीक) की तरफ़ मुझे मुतवज्जेह करना अल्लाह तआला की एक ख़ास ताईद है, अल्लाह तआला के फ़ज़ल व करम से मुझे कुछ ऐसी खूबियां हासिल थीं कि जिन बाज़ अकाबिर को मेरे इस काम के मुतअल्लिक़ पूरी मालूमात न होने की वजह से कभी कुछ शक भी हुये तो उन्होंने भी मेरी वजह से ख़ामोशी इख़्तियार की और अपनी राय के फ़र्क़ को ज़ाहिर नहीं फ़रमाया। मेरी वह खूबियां यह हैं :–

1. एक तो यह कि मेरी फ़रमांबरदारी का तअल्लुक़ अपने ज़माने के सब ही बुज़ुर्गों से रहा और अलहम्दु लिल्लाह सबकी इनायात और सब का एतिमाद मुझे हासिल रहा।

2. दूसरे यह कि मेरे वालिद माजिद एक बड़े मरतबे वाले और माने हुये बुज़ुर्ग थे और आपस में बहुत से इख़्तिलाफ़ात रखने वाले अहले दीन के मुख़्तलिफ़ तबक़े उन पर मुत्तफ़िक़ थे।

3. तीसरे यह कि मेरा ख़ानदान एक ख़ास असर और इज़्ज़त और दबदबा रखने वाला ख़ानदान था।

[163]

फ़रमाया - उलमा–ए–हक़ को मेरा यह पैग़ाम अदब व एहतेराम के साथ पहुंचाओ कि आप लोगों को मेरी इस

तहरीक के मुतअल्लिक़ जो नेक गुमान या जो थोड़ी सी तवज्जोह हुई है तो वह उन बेचारे अनपढ़ मेवातियों के बयान करने या उनमें कुछ इस्लाही तबदीली के देखने से हुई है, जो पहले गोबर तक पूजते थे और इसलिये अगले मुशरिकों से भी घटिया थे (क्योंकि वह तो खूबसूरत मूर्तियों और चमकदार पत्थरों ही को पूजा करते थे) तो ऐसे गिरे हुये लोगों को बात पहुंचाने या उनको देखने से काम का सही अन्दाज़ा क्योंकर हो सकता है, आप जैसे हज़रात अगर सीधे मुझसे मिलकर इस काम को समझें तो अस्ल क़दर व क़ीमत मालूम हो।

[164]

फ़रमाया - हमारी इस तहरीक का एक ख़ास मक़सद यह है कि मुसलमानों के सारे जज़बात पर दीन के जज़बे को ग़ालिब करके और उस रास्ते से मक़सद की अव्वलियत पैदा करके और "इकराम मुस्लिम" के उसूल को रिवाज देके पूरी क़ौम को इस हदीस का मिसदाक़ बनाया जायः-

"اَلْمُسْلِمُوْنَ كَجَسَدٍ وَّاحِدٍ"

[165]

फ़रमाया - हमारे इस काम में इख़लास और सच्चे दिल के साथ इजतिमाईयत और

شُوْرٰى بَيْنَهُمْ

की (यानी मिल जुल कर और आपसी मशवरे से काम करने की) बड़ी ज़रूरत है, और इसके बग़ैर बड़ा ख़तरा है।

[166]

बाज़ ख़ादिमों को मुख़ातब करते हुये फ़रमाया-

"हज़रत फ़ारुके आज़म रज़ियतलाहु अन्हु, हज़रत अबू उबैदह रज़ि. और हज़रत मआज रज़ि. से फ़रमाते थे कि "मैं तुम्हारी निगरानी से मस्तग़नी[1] नहीं हूं।" मैं भी आप लोगों से यही कहता हूं कि मेरे हालात पर नज़र रखिये और जो बात टोकने की हो, उस पर टोकिये।"

[167]

फ़रमाया - हज़रत फ़ारुके आज़म रज़ि. के आमिलों[2] के पास से जब कोई क़ासिद आते तो आप उन से आमिलों की ख़ैरियत पूछते और उनके हालात मालूम करते, लेकिन इसका मतलब दीनी ख़ैरियत और दीनी हाल पूछना होता था न कि आज कल की रायज मिज़ाज पुरसी–चुनान्चे एक आमिल के पास से आने वाले क़ासिद से जब आपने आमिल की ख़ैरियत पूछी तो उसने कहा :–

"वहां ख़ैरियत कहां है, मैंने तो उनके दस्तर ख़्वान पर दो–दो सालन जमा देखे।"

गोया रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम जिस तर्ज़े ज़िन्दगी पर साहब–ए–केराम रज़ि. को छोड़ गये थे बस उस

---

1. बेनियाज 2. गवर्नर

पर क़ायम रहना ही हज़रात के नज़दीक ख़ैरियत का मेयार था।

[168]

फ़रमाया - अल्लाह से उसका फ़ज़्ल और रिज़्क़ वग़ैरा मांगना तो फ़र्ज़ है और अपनी इबादत व ख़िदमत वग़ैरा का दुनिया ही में बदला चाहना हराम है।

[169]

फ़रमाया - किसी मुसलमान को उसकी बे राह रवी की वजह से पूरे तौर से काफ़िर कहना तौर

خلود فی النار

(जहन्नम में हमेशगी) वाली तकफ़ीर करना बड़ा भारी काम है। हाँ

"كُفْرٌ دُوْنَ كُفْرٍ"

का उसूल सही है, तमाम गुनाह कुफ़्र ही की शाख़ें और उसकी औलाद हैं और इसी तरह तमाम नेकियाँ ईमान की आलअवलाद है, पस हमारी यह तहरीक दरहक़ीक़त ईमान की तजदीद[1] और उसकी तकमील की तहरीक है।

[170]

फ़रमाया -

اِتَّخَذُوْا دِيْنَهُمْ لَهْوًا وَّلَعِبًا

1. ताज़ा करना

दीनी कामों को बे मक़सद या अल्लाह के हुक्म की इताअत और अल्लाह की रज़ा और आख़िरत के सवाब के सिवा और मक़सदों के लिये करना भी दीन को लहवो लइब[1] बनाना है।

[171]

फ़रमाया - "ظُنُّوا الْمُؤْمِنِيْنَ خَيْرًا" और

"اِنَّ حُسْنَ الظَّنِّ مِنَ الْعِبَادَةِ"

का हुक्म इस हालत में है कि जब किसी से कोई मामला करना न हो तो उस वक़्त सिर्फ़ हुस्ने ज़न[2] से ही काम लेना चाहिये, और जब मामला करना हो तो उस वक़्त के लिये

"اَلْحَزْمُ سُوْءُ الظَّنِّ"

का हुक्म है, सही जगहों और मौक़ों का फ़र्क़ न समझने से क़ुरआन की आयतों के समझने में बड़ी ग़लत फ़हमियां होती हैं।

[172]

फ़रमाया - हमारे सब काम करने वालों को यह बात अच्छी तरह दिमाग़ में बैठा लेनी चाहिये कि तब्लीग़ के लिये बाहर जाने के ज़माने में ख़ासतौर से इल्म और ज़िक्र की तरफ़ बहुत ज़्यादा तवज्जोह करें, इल्म और ज़िक्र में तरक़्क़ी के बग़ैर दीन की तरक़्क़ी मुमकिन नहीं इल्म और ज़िक्र का हासिल करना और पूरा करना भी इस राह के अपने बड़ों से लगाव रखते हुये और उनकी हिदायत और उनकी निगरानी में हो।

---

1. नाजायज़ खेलकूद 2. किसी के बारे में नेक ख़्याल।

अम्बिया अलैहिमुस्सलाम का इल्म व ज़िक्र अल्लाह तआला की हिदायत पर और उसके हुक्म के मातहत होता था, और हजराते सहाबा किराम रज़ि. का इल्म व ज़िक्र रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम की हिदायत के मातहत और आपकी निगरानी में होता था, फिर हर ज़माना के लोगों के लिये इस कुरआन के अहले इल्म और अहले ज़िक्र गोया रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम के खुल्फ़ा हैं, इसलिये इल्म व ज़िक्र में अपने बड़ों की निगरानी से इस्तिग़ना[1] नहीं।

यह भी ज़रूरी है कि ख़ास कर बाहर निकलने के ज़माने में सिर्फ़ अपने ख़ास कामों में मशग़ूलियत रहे और दूसरे तमाम कामों से अलग रहा जाय और वह ख़ास काम यह है:—

1— तब्लीग़ी गश्त 2— इल्म 3 —ज़िक्र 4— दीन के लिये घर छोड़कर निकलने वाले अपने साथियों की ख़ास तौर से, और अल्लाह तआला की आम मख़लूक़ की आम तौर से ख़िदमत की मश्क़ 5—नियत का सही होना और एख़लास व एहतिसाब[2] का एहतिमाम। और इत्तिहामे नफ़्स[3] के साथ बार—बार इस एख़लास व एहतिसाब की तजदीद।

यानी इस काम के लिये निकलते वक़्त भी यह ख़्याल करना और सफ़र के दरमियान में भी बार—बार इस ख़्याल

---

1. बेनियाज़ी 2. अपना मुहासबा करना।
3. नफ़्स की शिर्कत की तोहमत।

को ताज़ा करते रहना कि हमारा यह निकलना सिर्फ़ अल्लाह के लिये और उन आख़िरत की नेमतों की लालच में है जिनका वादा दीन की मदद व ख़िदमत करने और इस राह की तकलीफ़ें उठाने पर फ़रमाया गया है, यानी बार – बार इस ध्यान को दिल में जमाया जाय कि अगर मेरा यह निकलना ख़ालिस हो गया और अल्लाह तआला ने उसको कुबूल फ़रमा लिया तो अल्लाह तआला की तरफ़ से मुझे वह नेमतें ज़रूर मिलेंगी जिनका वादा इस काम पर कुरआन पाक और अहादीस में फ़रमाया गया है और वह यह होंगी।

बहर हाल इन अल्लाह के वादों पर यक़ीन और इनकी उम्मीद के ध्यान को बार–बार ताज़ा किया जाय, और अपने सारे अमल को उसी यक़ीन और उसी ध्यान से बांधा जाय, बस इसी का नाम "ईमान व एहतिसाब" है और यही हमारे आमाल की रूह है।

[173]

फ़रमाया - हाय, अल्लाह के वादों पर यक़ीन नहीं रहा, अल्लाह के वादों पर यक़ीन और भरोसा पैदा करो और फिर उस यक़ीन व भरोसे ही की बुनियाद पर काम करने की मश्क़ करो, और अल्लाह के वादों के माने भी खुद न गढ़ो, तुम्हारा इल्म और तजुर्बा बहुत महदूद है, उसके वादों का मतलब उसकी शान के मुताबिक़ समझो और उससे यूं ही मांगो कि अपनी शान और अपनी कुदरत के मुताबिक़ उन वादों को

पूरा फ़रमा। आख़िरत की नेमतों का मतलब और असल हक़ीक़त का तुम इस दुनिया में क्या अन्दाज़ा कर सकते हो और क्योंकर वह अन्दाज़ा सही हो सकता है, जबकि हदीसे क़ुदसी में उन नेमतों की ख़ूबी ही यह बयान की गई है:–

لَا عَيْنٌ رَأَتْ وَلَا أُذُنٌ سَمِعَتْ وَلَا خَطَرَ عَلٰى
قَلْبِ بَشَرٍ

(यानी जन्नत में ऐसी नेमतें हैं जो न तो किसी आंख ने देखी हैं और न किसी कान ने उनका हाल सुना है और न किसी इनसान के दिल में कभी उनका ख़्याल आया है)

अफ़सोस हमने उसकी वादा की हुई नेमतों को अपने इल्म व समझ और इस दुनिया के अपने मुशाहेदे और तजुर्बे के मुताबिक़ समझ कर और उसकी उम्मीद बांध के बड़ा घाटा कर लिया।

لَقَدْ حَجَّرْتُمْ وَاسِعًا

उसकी नेमतें और उसकी अता व बख़्शिश तो उसकी शान के मुताबिक़ होगी।

[174]

फ़रमाया - तुमने

"وَمَا خَلَقْتُ الْجِنَّ وَالْإِنْسَ إِلَّا لِيَعْبُدُوْنِ"

के मुक़्तज़ा से जिस क़दर इनहिराफ़ किया उसी क़दर "خَلَقْنَا لَكُمْ مَّا فِي السَّمٰوٰتِ وَالْاَرْضِ" का ज़ुहूर कम हो गया। यानी जिस तनासुब से तुम्हारी बन्दगी में कमी आई उसी तनासुब से ज़मीन व आसमान की कायनात से तुम्हारा तमत्तो (नफ़ा हासिल करना) कम हो गया।

कायनात को तुम्हारा ख़ादिम इसी लिये बनाया गया था कि तुम अल्लाह तआला का काम करो और उसकी इताअत व बन्दगी और उसकी मरज़ी के फ़रोग़ में लगे रहो। जब तुमने अपना यह फ़र्ज़ छोड़ दिया तो ज़मीन व आसमान भी तुम से फिर गये।

क़िस्त नम्बर - 11

[175]

फ़रमाया - जिन जगहों को हुज़ूर सल्लल्लाहू अलैहि वसल्लम ने जानों की बाज़ी लगा के, बल्कि उसको जां बाज़ी के शौक व इश्क़ से हासिल करना बतलाया था और सहाबा केराम रज़ि. ने दीन की राह में अपने को मिटा के जो कुछ हासिल किया था तुम लोग उसको आराम से लेटे–लेटे किताबों से हासिल कर लेना चाहते हो।

[176]

फ़रमाया - जो इनआमात और नतीजे खून से वाबस्ता थे उनके लिये कम से कम पसीना गिराना तो चाहिये।

[177]

फ़रमाया - वहां हाल यह था कि हज़रत अबूबकर व हज़रत उमर रज़ियल्लाहु अनहुम भी दीन की राह में अपने को मिटा देने के बावजूद और हुज़ूर सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम की खुली हुई और यक़ीन खुशख़बरियों के बावजूद इस दुनिया से रोते हुये गये।

[178]

फ़रमाया - पसन्द को मुबाशरत के बराबर समझना बड़ा धोका है और शैतान यही करता है कि आदमी को पसन्द ही पर क़ाने[1] बना देता है।

(इस इरशाद का मतलब यह है कि किसी अच्छे काम को सिर्फ़ अच्छा समझ लेने से उस काम में शिरकत नहीं होती, बल्कि उसमें लगने और उसको करने ही से उसका हक़ अदा होता है। लेकिन बहुत से लोगों को शैतान यह धोका देता है कि वह काम से मुत्तफ़िक़ हो जाने को काम में लग जाना और शामिल होना समझने लगते हैं, यह शैतान का बड़ा धोका है।)

[179]

फ़रमाया - हमारी यह तहरीक दुश्मन नवाज़ दोस्त कुश है, आ जाये जिसका जी चाहे।

[180]

फ़रमाया - भई! इस वक़्त कुफ़्र व इलहाद बहुत ताक़तवर है। ऐसी हालत में मुन्तशिर और इन्फ़िरादी इसलाही कोशिशों से काम नहीं चल सकता इस लिये पूरी ताक़त के साथ इजतिमाई कोशिश होनी चाहिये।

---

1. काफ़ी सझने वाला।

وَاعْتَصِمُوْا بِحَبْلِ اللّٰهِ جَمِيْعًا

[181]

फ़रमाया - इल्म व ज़िक्र को मज़बूती से थामने की ज़्यादा से ज़्यादा ज़रूरत है, मगर इल्म व ज़िक्र की हक़ीक़त अच्छी तरह समझ लेनी चाहिये।

ज़िक्र की हक़ीक़त है लापरवारी न होना, और दीनी फ़रायज़ की अदायगी में लगा रहना, सबसे ऊँचे दर्जे का ज़िक्र है। इस लिये दीन की मदद और उसके फैलाने की कोशिश में लगा रहना ज़िक्र का ऊँचा दर्जा है बशर्ते कि अल्लाह के हुकमों और वादों का ख़्याल रखते हुये हो।

और नफ़िली ज़िक्र इस वास्ते है कि आदमी के जो अवक़ात फ़राएज़ में मशग़ूल न हों वह बेकार बातों मे न गुज़रें, शैतान यह चाहता है कि फ़रायज़ में लगने से जो रोशनी पैदा होती है और जो तरक़्क़ी हासिल होती है वह बेकार बातों में लगा के उसको बरबाद कर दे। पस इस से हिफ़ाज़त के लिये नफ़ली ज़िक्र है। ग़र्ज़कि फ़रायज़ से जो वक़्त फ़ारिग़ हो उसको नफ़ली ज़िक्र से पूरा किया जाय ताकि शैतान बेकार बातों में मशग़ूल करके हमें नुक़सान न पहंचा सके (और नफ़ली ज़िक्र का एक ख़ास अहम फ़ायदा यह भी है कि इस से आम दीनी कामों में ज़िक्र की शान पैदा होती है और अल्लाह के हुकमों के पूरा करने में और उसके वादों के शौक़ में काम करने की महारत पैदा होती है)।

इसी सिलसिले में फ़रमाया - फ़रायज़ में लगना यहाँ तक कि नमाज़ पढ़ना भी अगर अल्लाह के हुकमों और वादों के ध्यान के साथ न हो तो असली ज़िक्र नहीं बल्कि सिर्फ़ जिस्म के कुछ हिस्सों का ज़िक्र है और दिल की ग़फ़लत है, और हदीस में दिल ही के मुतअल्लिक़ है कि

إِذَا صَلَحَ صَلَحَ الْجَسَدُ كُلُّهُ وَإِذَا فَسَدَ
فَسَدَ الْجَسَدُ كُلُّهُ

इनसान के वजूद में यही वह सेन्टर है कि अगर वह ठीक हो तो फिर सब ठीक है और अगर वह ख़राब हो तो सब ख़राब है

तो असली चीज़ है बस अल्लाह के हुकमों और उसके वादों के ध्यान के साथ अल्लाह के कामों में लगा रहना। यही हमारे नज़दीक ज़िक्र का हासिल हैं।

और इल्म से मुराद दीनी मसाएल और दीनी उलूम का सिर्फ़ जानना नहीं है। देखो यहूद अपनी शरीअत और अपने आसमानी उलूम के कैसे आलिम थे कि रसूलुल्लाह सल्ललहु अलैहि वसल्लम के नाएबों के नाएबों तक के हुलये और नक़्शे, यहाँ तक कि उनके जिस्मों के तिल के मुतअल्लिक़

भी इनको इल्म था।[1] लेकिन क्या इन बातों के सिर्फ़ जानने ने उनको फ़ायदा दिया?

[182]

इसी सिलसिले में फ़रमाया—इल्म के लिये जो वज़—ए—मोहम्मदी थी (यानी तलब और अज़मत व मोहब्बत के साथ दोस्ती व मेल जौल से इल्म हासिल करना और ज़िन्दगी से ज़िन्दगी सीखना) इसकी खुसूसियत यह थी कि इसके ज़रीये जितना इल्म बढ़ता था उसी क़दर अपनी जिहालत और अपनी इल्म की कमी का एहसास तरक़्क़ी करता था......और इल्म हासिल करने का जो तरीक़ा अब रायज हो गया है उसका नतीजा यह है कि इल्म जितना आता है ज़ोम[2] उससे ज़्यादा पैदा होता है, फिर ज़ोम से किब्र पैदा होती है और किब्र जन्नत में नहीं जायेगा........इसके अलावा इल्म के ज़ोम के बाद इल्म हासिल करने की तड़प नहीं रहती जिसकी वजह से इल्म की तरक़्क़ी ख़त्म हो जाती है।

---

1. कुछ रिवायतों में है कि कुछ यहूदी उल्मा ने हज़रत फ़ारूक़े आज़म रज़ि. के बदन के किसी ख़ास हिस्से पर तिल या तिल की क़िस्म का कोई निशान देख कर उनके मुतअल्लिक़ बतला दिया था कि यह शख़्स नबी—ए—आख़िरुज़्ज़माँ (हुज़ूर सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) का ख़लीफ़ा है और बैतुल—मुक़द्दस इसके दौर में फ़तह होगा। इस क़िस्म की कई रिवायात "इज़ालतुल ख़िफ़" में हज़रत शाह वलीयुल्लाह रहमतुल्लाह अलैह ने नक़ल फ़रमाई हैं। – नोमानी
2. गुरूर 3. तकब्बुर

[183]

एक साहब जो एक तब्लीग़ी जमाअत में जाने के लिये अपने को पेश कर चुके थे, उन्होंने हज़रत की ख़िदमत में सौ रूपये भी पेश किये, हज़रत ने उनको कुबूल फ़रमा लिया और फ़रमाया।

"मेरा जी चाहता है कि जो लोग दीन के लिये जिस्म व जान का हिस्सा नहीं देते मैं उनका माल न लेने की क़सम खा लूँ।"

फिर इसी सिलसिले में फ़रमाया—माल का ख़र्च करना जो इबादत है तो यह मक़सूद बिज़्ज़ात नहीं है, बलिक इसकी मशरूईयत[1] इस वास्ते से है कि माल से लगाव न पैदा हो।

[184]

फ़रमाया—हज़रत उमर फ़ारूक़ रज़ियतलाहु तआला अन्हु के ज़माने में उम्मुल मुमिनीन हज़रत ज़ैनब रज़ियल्लाहु अनहा के यहां जब माले ग़नीमत (जंग में जीते हुआ माल) में से उनका हिस्सा पहुंचा (जो शायद मिक़दार में ज़्यादा होगा और उससे उनको दिलबस्तगी का अन्देशा हुआ होगा) तो परेशान होकर दुआ फ़रमाई कि ऐ अल्लाह इस घर में यह फिर न आये, चुनान्चे ऐसा ही हुआ (यानी उनकी वफ़ात हो गई)।

---

1. जायज़ होना

[185]

फ़रमाया—ईमान यह है कि अल्लाह व रसूल को जिस चीज़ से खुशी और आराम हो बन्दे को भी उससे खुशी और आराम हो। और जिस चीज़ से अल्लाह व रसूल को नागवारी और तकलीफ़ हो बन्दे को भी उससे नागवारी और तकलीफ़ हो। और तकलीफ़ जिस तरह तलवार से होती है उसी तरह सुई से भी होती है। पस अल्लाह व रसूल को नागवारी और तकलीफ़ कुफ़्र व शिर्क से भी होती है और गुनाह से भी, इस लिये हमको भी गुनाह से नागवारी और तकलीफ़ होनी चाहिये।

[186]

एक रोज़ यह अजिज़ (लेखक) ऐसे वक़्त हज़रत के कमरे में पहुंचा कि कुछ मेवाती ख़ादिम हज़रत को ज़ोहर की नमाज़ के लिये वज़ू करा रहे थे (मरज़ुल वफ़ात के आख़िरी दिनों में कमज़ोरी में ज़्यादती की वजह से हज़रत को लेटे—लेटे वज़ू कराया जाता था) मेरे पहुंचने पर हज़रत ने इरशाद फ़रमाया :—

इसके बावजूद कि इल्मे दीन में हज़रत अब्दुल्लाह बिन अब्बास रज़ि. का दर्जा यह था कि हज़रत फ़ारूके आज़म रज़ियल्लाहु अन्हु उनको सहाबा के बड़ों के साथ बिठाते थे और बावजूदे कि उन्होंने खुद रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम को वज़ू करते देखा था और उसके बाद मुद्दतों हज़रत अबू बकर और हज़रत उमर रज़ियल्लाहु अनहुमा का वज़ू भी देखा होगा, फिर भी हज़रत अली रज़ियल्लाहु अन्हु

को वज़ू कराते थे और इससे उनका मक़सद तअल्लुम भी होता था।"

[187]

जो मेवाती ख़ादिम हज़रत को उस वक़्त वज़ू करा रहे थे उनकी तरफ़ इशारा करते हुये फिर इस आजिज़ (लेखक) से इरशाद फ़रमाया :–

"मैं अभी इन लोगों से यह कह रहा था कि तुम यह समझते हो कि मेरी नमाज़ अच्छी होती है, इसलिये तुम मुझे वज़ू कराते वक़्त बीमार की ख़िदमत की नियत के अलावा यह नियत भी किया करो कि ऐ अल्लाह हम यह समझते हैं कि तेरे इस बन्दे की नमाज़ हमसे अच्छी होती है तो हम इसको इस लिये वज़ू कराते हैं कि इसकी नमाज़ के सवाब में हमारा हिस्सा हो जाय।"

फिर फ़रमाया–यह मैं इन लोगों को बतलाता हूं, लेकिन मैं खुद अगर यह समझने लगूं कि मेरी नमाज़ उन लोगों से अच्छी होती है तो मरदूद हो जाऊंगा, इस लिये मैं अपने अल्लाह से यूं दुआ करता हूं कि ऐ अल्लाह तेरे यह सादा दिल बन्दे मेरे मुतअल्लिक़ यह ख़्याल रखते हैं कि मेरी नमाज़ अच्छी होती है और इसी लिये यह बेचारे मुझे वज़ू कराते हैं तू सिर्फ़ अपने करम से उनके ख़्याल की लाज रख ले और मेरी नमाज़ को क़ुबूल फ़रमाले और उसके सवाब में अपने इन बन्दों को भी हिस्सा दे।

फिर वज़ू कराने वाले उन मेवातियों की तरफ़ मुख़ातब

होकर फ़रमाया :–

"तुम लोग उन उलमा की ख़िदमतें करो जो अभी तक तुम्हारी क़ौम को दीन सिखाने की तरफ़ मुतवज्जेह नहीं हुये हैं। मेरा क्या है, मैं तो तुम्हारे मुल्क में जाता ही हूं, तुम न बुलाओ जब भी जाऊंगा, जो उलाम अभी तुम्हारी तरफ़ मुतवज्जेह नहीं हैं उनकी ख़िदमतें करोगे तो वह भी तुम्हारी क़ौम की दीनी ख़िदमत करने लगेंगे।"

[188]

फ़रमाया–शेख़ की ख़िदमत इस लिये और इस नियत और इरादे से करनी चाहिये कि उसके ज़रीये आदत और मश्क़ हो जाय अल्लाह के बन्दों की ख़िदमत की।

फिर फ़रमाया–नियत के साथ मोमिन बन्दों की ख़िदमत अब्दियत की सीढ़ी है।

[189]

मशवरे की ताकीद करते हुये एक दफ़ा इरशाद फ़रमाया:–

"मशवरा बड़ी चीज़ है, अल्लाह तआला का वादा है कि जब तुम मशवरा के लिये अल्लाह पर भरोसा करके जम के बैठोगे तो उठने से पहले तुमको नेकी की तौफ़ीक़ मिल जायेगी।"

फिर फ़रमाया–यह मज़मून किसी हदीस में आया है, इस वक़्त अस्ल हदीस मुझे याद नहीं।

[190]

फ़रमाया—हज़रत फ़ारूक़े आज़म रज़ियल्लाहु अन्हु और इसी तरह दूसरे सहाबा रजि. की आमदनियां बहुत थीं और अपने ऊपर ख़र्च करने में भी वह बहुत सोच समझकर ख़र्च करने वाले वाक़े हुये थे। उनका खाना पहन्ना बहुत ही मामूली था और निहायत सादा बल्कि फ़क़ीराना ज़िन्दगी गुज़ारते थे। इसके बावजूद उनमें से बहुत से दुनिया से क़रज़दार गये क्योंकि वह अपनी सारी आमदनी दीन की राह में ख़र्च कर देते थे। दरअसल मोमिन का रूपया इसी लिये है कि वह अल्लाह के काम आये।

[191]

कमरे में बिछे हुये एक पलंग की तरफ़ इशारा करते हुये इस आजिज़ (लेखक) से फ़रमाया :–

"यह पलंग मेरी वाल्दा के दादा का है और बराबर इस्तेमाल में रहता है।" (बाद में हिसाब लगाया गया तो मालूम हुआ कि करीबन अस्सी बरस इस पर गुज़र चुके हैं।)

फिर फ़रमाया—बरकत यह है कि कोई चीज़ आदतन जिस वक़्त और जिस हालत में ख़त्म हो जानी चाहिये वह उसमें ख़त्म न हो और बाक़ी रहे।

फ़रमाया—हुजूर सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम की दुआ से बाज़ अवक़ात खाने वग़ैरा में बरकत के जो वाक़ेआत हुये हैं उनकी क़िस्म यही थी कि अस्ल चीज़ ख़त्म नहीं होती थी।

“كُلَّ يَوْمٍ هُوَ فِي شَأْنٍ”

[192]

फ़रमाया—

का मतलब यह है कि जो कुछ और जैसे–जैसे अज़ीमुश्शान और अक्ल को हैरत में डाल देने वाले काम अल्लाह पाक पहले कर चुके हैं उनसे हज़ारहा हज़ार दरजे बड़े काम वह हर वक्त कर सकते हैं और उनकी कुदरते कामिला बराबर अपना काम करती है।

[193]

बम्बई के मशहूर उर्दू रोज़ नामाए "अलहिलाल" के मालिक व एडीटर हाफ़िज़ अली बहादुर खां बी. एं. हज़रत के मरज़ुल वफ़ात ही में एक दिन हज़रत की ज़ियारत के लिये तशरीफ़ लाये। हज़रत ने बहुत ही कमज़ोरी के बावजूद करीबन आधा घन्टा उनसे गुफ्तगू फ़रमाई वह इस गुफ्तगू से बहुत ही मुतअस्सिर हुये और बम्बई पहुंचकर उन्होंने "अलहिलाल" की कुछ इशाअतो में हज़रत की इस लाइ की दावत व तब्लीग़ की बड़ाई व अहम्मियत और उसकी सन्जीदगी का मानना इस तरह किया कि जिसकी उम्मीद आजकल के किसी एडीटर और लीडर से नहीं की जा सकती।

अलहिलाल के वह परचे मुझे एक जगह से मिल गये, हाफ़िज़ साहब के वह मज़ामीन पढ़कर मुझे बड़ी खुशी हुई और मैने इरादा किया कि मैं हज़रत को भी सुनाऊँगा, चुनान्चे वह परचे हाथ में लिये किसी मुनासिब

वक़्त में इस उम्मीद के साथ ख़िदमत में हाज़िर हुआ कि हज़रत हाथ में परचे देख कर खुद ही पूछेंगे कि हाथ में क्या है, तो मुझे अर्ज़ करने का और उन मज़ामीन के सुनाने का मौका मिल जायेगा।

लेकिन मेरी उम्मीद और आरज़ू के ख़िलाफ़ हज़रत ने कुछ पूछा ही नहीं। देर तक इन्तिज़ार के बाद मुझसे न रहा गया और मैंने खुद ही अर्ज़ किया कि हज़रत! फ़लां दिन बम्बई के हाफ़िज़ अली बहादुर खां साहब जो तशरीफ़ लाये थे वह अलहम्दु लिल्लाह बहुत हीं मुतअस्सिर होकर गये और उन्होंने अपने अख़बार में हमारे काम के मुतआल्लिक कुछ मज़ामीन लिखे है जिनमें काम की अज़मत और अहम्मियत का उन्होंने बहुत एतिराफ़ किया है और मालूम होता है कि खूब समझा है, अगर इरशाद हो तो उनमें से एक आध मज़मून सुना दूँ?

फ़रमाया—मोलबी साहब! जो काम हो चुका उसका क्या ज़िक्र करना है, बस यह देखो कि जो कुछ हमको करना था उसमें से क्या रह गया, और जो कुछ किया जा चुका उसमें कितनी और कैसी—कैसी कोताहियां हुई, इख़लास में कितनी कमी रही, अल्लाह तआला के हुक्म की अज़मत के ध्यान में कितना कुसूर हुआ, अमल के आदाब की तलाश में और नबी के तरीक़—ए—इत्तिबा की कोशिश में कितना नुक़सान रहा? मोलवी साहब। इन हुक्मों के बग़ैर पिछले काम का ज़िक्र मुज़ाकरह और उस पर खुश होना बस ऐसा है जैसे रास्ता चलने वाला मुसाफ़िर खड़ा होकर पीछे की तरफ़ देखने लगे और खुश होने लगे।

पिछले काम की सिर्फ़ कोताहियां तलाश करो और उनको पूरा करने की फ़िक्र करो और आइन्दा के लिये सोचो कि क्या करना है?

यह मत देखो कि एक शख़्स ने हमारी बात समझ ली और एतिराफ़ कर लिया बल्कि इस पर ग़ौर करो कि ऐसे कितने लाख और कितने करोड़ बाक़ी हैं जिनको हम अभी अल्लाह की बात पहुंचा भी नहीं सके हैं और कितने हैं जो जानकारी और एतिराफ़ के बाद भी हमारी कोशिशों की कमी की वजह से अमल पर नहीं पड़े हैं।

[194]

फ़रमाया—नमाज़ को हदीस में

"عِمَادُ الدِّيْنِ"

(दीन का सुतून) फ़रमाया गया है। इसका यह मतलब है कि नमाज़ पर बाक़ी दीन मुअल्लक़ है और वह नमाज़ ही से मिलता है। नमाज़ में दीन का तफ़क़्क़ोह भी मिलता है और अमल की तौफ़ीक़ भी मिलती है। फिर जैसी किसी की नमाज़ होगी वैसी ही उसके हक़ में यह अता भी होगी। इसलिये नमाज़ की दावत देना और लोगों की नमाज़ों में ख़ुशू व ख़ुज़ू पैदा करने की कोशिश करना बिलवास्ता[1] पूरे दीन के लिये कोशिश करना है।

फ़रमाया—जो काम अवाम मुख़्लिसीन से लिया जा सकता हो ओर उससे उन मुख़्लिसीन के दर्जे और अज्र में

1. माध्यम द्वारा

तरक़्क़ी की उम्मीद हो, वह उनसे न लेना और उसको खुद करना, उन मुख़लिसों के साथ हमदर्दी नहीं है बल्कि उन पर एक तरह का जुल्म है और अल्लाह के निहायत करीमाना कानून

"الدال على الخير كفاعله"

की नाक़दरी है।

फ़रमाया—भई, दीन पर अमल बड़े तफ़क्क़ोह को चाहता है।

[196]

फ़रमाया—यह बहुत अहम उसूल है कि हर तबक़े को दावत उसी चीज़ की दी जाय जिसका हक़ होना और ज़रूरी होना वह खुद भी मानता और अमल में कोताही को अपनी कोताही समझता हो, जब वह तबक़ा उन चीजों पर अमल करने लगेगा तो अगली चीज़ों का एहसास इनशाअल्लाह उसमें खुद बखुद पैदा होगा, और उनकी अदायगी की सलाहियत भी पैदा होगी।

[197]

फ़रमाया—जो जितने ज़्यादा अहले हक़ हैं उनमें उतने ही ज़्यादा काम और कोशिश की ज़रूरत है।

उनका दीन के वास्ते उठना बहुत ज़रूरी है क्योंकि वही अस्ल और जड़ हो सकते हैं।

[198]

फ़रमाया--अफ़सोस! जो लोग दीन के लिये कुछ भी नहीं कर रहे हैं और दीन के मामले में बिल्कुल ही ग़ाफ़िल और पिछड़े हुये हैं, हम उनको देख-देख के अपनी ज़रा सी कोशिश व हरकत पर क़ाने और मुतमइन हो जाते हैं और समझने लगते हैं कि हम अपना हक़ अदा कर रहे हैं। हालांकि चाहिये यह कि अल्लाह के जिन बन्दों ने दीन के लिये अपने को बिल्कुल मिटाया था हम उनके नमूनों को नज़र के सामने रख के हमेशा अपने को छोटा और कोताही करने वाला समझते रहें और जितना कर रहे हैं उस से ज़्यादा करने के लिये हर वक़्त हरीस और बेचैन रहें। हज़रत उमर रज़ि. को हमेशा इसकी लालच रहती थी कि किसी तरह दीन की ख़िदमत में वह हज़रत अबूबकर रज़ि. का मक़ाम पा लें।

[199]

फ़रमाया--तब्लीग़ के आदाब में से यह है कि बात बहुत लम्बी न हो और शुरू में लोगों से सिर्फ़ उतने अमल का मुतालबह किया जाय जिसको वह बहुत मुश्किल और बड़ा बोझ न समझें। कभी-कभी लम्बी बात और लम्बा मुतालबा लोगों के मुंह फेरने की वजह बन जाती है।

[200]

फ़रमाया—बहुत से लोग यह समझते हैं कि बस पहुंचा देने का नाम तब्लीग़ है, यह बड़ी ग़लत फ़हमी है। तब्लीग़ यह है कि अपनी सलाहियत और क़ाबलियत की हद तक लोगों को दीन की बात इस तरह पहुंचाई जाय, जिस तरह पहुंचाने से लोगों के मानने की उम्मीद हो। अम्बिया अलैहिमुस्सलाम यही तब्लीग़ लाये हैं।

[201]

फ़रमाया—फ़ज़ाएल का दर्जा मसाएल से पहले है, फ़ज़ाएल से आमाल के अर्ज पर यक़ीन होता है जो ईमान का मक़ाम है और इसी से आदमी अमल के लिये तैयार होता है। मसाएल मालूम करने की ज़रूरत का एहसास तो तब ही होगा जब वह अमल पर तैयार होगा, इसलिए हमारे नज़दीक फ़ज़ाएल की अहमियत ज़्यादा है।

[202]

फ़रमाया—तब्लीग़ी जमाअतों के कोर्स का एक अहम हिस्सा तजवीद भी है। क़ुरआन शरीफ़ अच्छी तरह पढ़ना बड़ी ज़रूरी चीज़ है।

"مَا اَذِنَ اللّٰهُ لِشَیْءٍ مَا اَذِنَ لِنَبِیٍّ یَّتَغَنّٰی بِالْقُرْاٰنِ"

तजवीद दर अस्ल वही तग़न्ना बिलक़ुरआन है जो रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम से नक़ल होकर हम तक पहुंची है।

लेकिन तजवीद की तालीम के लिये जितना वक़्त ज़रूरी है जमाअत में उतना वक़्त नहीं मिल सकता। इसलिये उन दिनों में तो सिर्फ़ इसकी कोशिश की जाय कि लोगों को इसकी ज़रूरत का एहसास हो जाय और कुछ लगाव हो जाय और फिर उसको सीखने के लिये वह मुस्तक़िल वक़्त ख़र्च करने पर तैयार हो जायें।

[203]

फ़रमाया—दूसरों को दीन की दावत और रग़बत दिलाना सिर्री[1] इबादत है, क्योंकि आम लोग इसको इबादत नहीं समझते और इसमें ऊँचे दरजे का तादिया भी है जो जेहरी[2] इबादतों में ख़ैर का ख़ास पहलू होता है।

[204]

फ़रमाया—बुज़ुर्गों की ख़िदमत का मक़सद दरअस्ल यह होता है कि उनके जो आम और मामूली काम दूसरे लोग कर सकते हों वह उनको अपने ज़िम्मे ले लें ताकि उनके औक़ात और उनकी ताक़तें उन बड़ें कामों के लिये फ़ारिग़ रहें जो वही बड़े पूरा कर सकते हैं। जैसे किसी वक़्त के बुज़ुर्ग या किसी आलिम व मुफ़ती के वह आम काम आप अपने ज़िम्मे लेलें जो आपके बस के हैं और उनको इनकी तरफ़ से फ़ारिग़ और बेफ़िक्र कर दें। तो वह हज़रात दीन के जो बड़े—बड़े काम करते हैं (जैसे इसलाह व इरशाद और

---

1. छुपी हुई 2. ज़ाहिरी

दर्स व फ़तवा देना वग़ैरा) तो वह ज़्यादा इतमिनान और सुकून से उनको पूरा कर सकेंगे और इस तरह यह ख़ादिम उनके उन बड़े कामों के अज्र में हिस्सेदार हो जायेंगे, तो दर अस्ल बड़ों की ख़िदमत उनके बड़े कामों में शरीक होने का एक ज़रीआ है।

[205]

फ़रमाया—असली मोहब्बत का तक़ाज़ा यह होता है कि मोहब्बत करने वाले और महबूब के जज़बात और ख़्वाहिशात तक में पूरा इत्तिहाद हो जाता है। मेरे भाई मौलाना मोहम्मद यहया साहब (रहमतुल्लाह अलैह) का यह हाल था कि बावजूदे कि वह ख़ानक़ाह से दूर रहते थे लेकिन अक्सर ऐसा होता कि अचानक उनके दिल में ख़ानक़ाह जाने का तक़ाज़ा पैदा होता और वह फ़ौरन चल देते और जब दरवाज़ा खोलते तो हज़रत गंगोही (रहमहुल्लाह) को इन्तिज़ार में बैठा पाते।

फ़रमाया—कि अल्लाह तआला से जब किसी बन्दे को सच्ची मोहब्बत हो जाती है तो फिर यही मामला अल्लाह पाक के साथ हो जाता है कि उसकी ख़ुशियां बन्दे की ख़ुशियां हो जाती हैं ओर जो बातें अल्लाह को नापसन्द होती हैं बन्दे को भी उनसे नफ़रत हो जाती है। और उस मोहब्बत के पैदा करने का तरीक़ा है मोहम्मद सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम के तरीक़े की फ़रमाबरदारी

[206]

जो लोग दीनदार और दीन जानने वाले होने के बावजूद दीन के फैलाने के लिये और उम्मत की इसलाह के लिये वह कोशिश नहीं कर रहे जो रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम की क़ायम मक़ामी का तक़ाजा है उनके बारे में एक रोज़ हज़रत की ज़बान से निकल गया कि "उन लोगों पर बड़ा रहम आता है"—उसके बाद देर तक और लगातार इस्तिग़फ़ार फ़रमाते रहे फिर इस अज़िज़ से मुख़ातब होकर इरशाद फ़रमाया :—

"मैंने यह इस्तिग़फ़ार इस पर किया है कि मेरी ज़बान से यह दावे का कल्मा निकल गया था कि "मुझे उन लोगों पर रहम आता है।"

[207]

फ़रमाया—मस्जिदें, मस्जिदे नबवी की बेटियां हैं, इस लिये उनमें वह सब काम होने चाहियें जो हुजूर की मस्जिद में होते थे, हुजूर सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम की मस्जिद में नमाज़ के अलावा तालीम व तरबियत का काम भी होता था और दीन की दावत के सिलसिले के सब काम भी मस्जिद ही से होते थे। दीन की तब्लीग़ या तालीम के लिये क़ाफ़लों की रवानगी भी मस्जिद ही से होती थी। यहां तक कि फ़ौजों का नज़्म भी मस्जिद ही से होता था। हम चाहते हैं कि हमारी मस्जिदों में भी उसी तरीक़े पर यह सब काम होने लगें।

[208]

फ़रमाया—सही काम का तरीक़ा यह है कि जो काम नीचे दरजा के लोगों से लिया जा सकता हो वह उन्हीं से लिया जाय, उनसे ऊँचे दरजा के लोगों का इसमें लगना जबकि नीचे दरजा के काम करने वाले भी नसीब हों बड़ी ग़लती है बल्कि एक तरह से नेमत की नाशुकरी और नीचे दरजे वालों पर जुल्म है।

[209]

दीन की दावत का एहतिमाम मेरे नज़दीक इस वक़्त इतना ज़रूरी है कि अगर एक शख़्स नमाज़ में मशग़ूल हो और एक नया आदमी आये ओर वापस जाने लगे और फिर उसके हाथ आने की उम्मीद न हो, तो मेरे नज़दीक नमाज़ को दरमियान में तोड़ के उससे दीनी बात कर लेनी चाहिये और उससे बात करके या उसको रोक के अपनी नमाज़ फिर से पढ़नी चाहिये।

[210]

इसी सिलसिले में फ़रमाया—मेरी हैसियत एक आम मोमिन से ऊँची न समझी जाय, सिर्फ़ मेरे कहने पर अमल करना बद दीनी है। मैं जो कुछ कहूं उसको किताब व सुन्नत पर पेश करके और खुद ग़ौर व फ़िक्र करके अपनी ज़िम्मेदारी पर अमल करो, मैं तो बस मशवरा देता हूं।

फ़रमाया—हज़रत उमर रजि. अपने साथियों से कहा करते थे कि "तुमने मेरे सर बहुत बड़ी ज़िम्मेदारी डाल दी है, तुम सब मेरे आमाल की निगरानी किया करो।"

मेरी भी अपने दोस्तों से बड़े इसरार और मन्नत से यह दरख़्वास्त है कि वह मेरी निगरानी करें, जहां ग़लती करूँ वहां टोकें और मेरी हिदायत व दुरूस्ती के लिये दुआयें भी करें।

[211]

फ़रमाया—किसी काम में मशग़ूल होना इसके अलावा बहुत सी चीज़ों से बचने को लाज़िम करता यानी जब ईशतिग़ाल फ़ी शैइन (यानी किसी चीज़ में मशग़ूलियत) होगा तो इशतिग़ाल अन अशया (दूसरी चीजों में मशग़ूलियत से बचना) ज़रूर होगा, और फिर जिस दर्जे का इश्तिग़ाल फ़ी शैइन होगा तो दूसरी चीजों के एहतिमाम में उसी दर्जे की कमी भी होगी। शरीअत में जो यह तालीम दी गई है कि हर अच्छे से अच्छे काम के ख़त्म पर इस्तिग़फ़ार किया जाय, मेरे नज़दीक इसमें एक राज़ यह भी है कि शायद इस अच्छे काम में मशग़ूली और मसरूफ़ियत की वजह से किसी दूसरे हुक्म को पूरा करने में कोताही हो गई हो, ख़ास कर जब किसी काम की लगन में दिल लग जाता है और दिल व दिमाग़ पर वह काम छा जाता है तो फिर उसके अलावा दूसरे कामों में अक्सर देर हो जाती है। इस लिये हमारे इस काम में लगने वालों को ख़ास तौर से काम के ज़माने में और काम के ख़त्म पर इस्तिग़फ़ार की कसरत अपने ऊपर ज़रूरी कर लेनी चाहिये।

[212]

फ़रमाया—उलमा से कहना है कि इन तब्लीग़ी जमाअतों की चलत फिरत और मेहनत व कोशिश से दीन की सिर्फ़ तलब और क़दर ही पैदा की जा सकती है और उनको दीन सीखने पर तय्यार किया जा सकता है। आगे दीन की तालीम व तरबियत का काम उलमा और सुलहा की तवज्जोह ही से हो सकता है। इसलिये आप हज़रात की तवज्जोह की बड़ी ज़रूरत है।

[213]

किसी सिलसिले से मौजूदा ज़माने के एक मशहूर साहिबे इल्म और साहिबे क़लम दीन की ख़िदमत करने वाले का ज़िक्र आ गया, जिनकी बाज़ अमली कमज़ोरियों की बिना पर ख़ास दीनदार हलक़ों को उनपर एतराज़ है तो फ़रमाया कि :—

"मैं तो उनकी क़दर करने वाला हूं, अगर उनमें कोई कमज़ोरी हो तो मैं उसका इल्म भी हासिल करना नहीं चाहता, यह मामला अल्लाह का है शायद उनके पास इसका कोई उज़्र हो, हमको तो आम हुक्म यह है कि दुआयें करो।

"لَا تَجْعَلْ فِيْ قُلُوْبِنَا غِلًّا لِّلَّذِيْنَ اٰمَنُوْا"

[214]

पंजाब के एक बड़े मशहूर आलिम ओर बुर्जुग (जिनसे

इस आजिज़ मुरत्तिब मलफ़ूज़ात को भी मुलाक़ात करने का मौक़ा मिल चुका है) देहली तशरीफ़ लाये हुये थे, यह आजिज़ उनकी ख़िदमत में हाज़िर हुआ और हज़रत मौलाना की दीनी दावत का और उसके उसूल और काम के तरीक़े का कुछ तफ़सील से ज़िक्र किया, और अपने क़दीम नियाज़मन्दाना तअल्लुक़ात की बिना पर उनको तरग़ीब दी और दरख़्वास्त की कि वह इस दीनी दावत के मुतअल्लिक़ ज़्यादा जानकारी हासिल करने के लिये कुछ वक़्त इस काम के मरकज़ निज़ामुद्दीन में गुजारें। दावत के उसूल और काम का तरीक़ा और काम की रफ़्तार के मुतअल्लिक़ मेरी गुज़ारिश सुनने के बाद उन्होंने बड़े तअस्सुर का इज़हार किया और फ़रमाया कि इस वक़्त तो मैं सिर्फ़ ज़ियारत के लिये हाज़िर हूंगा, लेकिन मैंने नियत करली है कि जब मौलाना को सेहत हो जायगी और वह कोई अहम तब्लीगी दौरा फ़रमायेंगे तो मैं इनशाअल्लाह उसमें साथ रहकर देखूंगा।

यह आजिज़ जब देहली शहर से बसती निज़ामुद्दीन वापस आया और हज़रत को यह पूरी गुफ़्तगू सुनाई तो इरशाद फ़रमाया :—

"शैतान का यह बहुत बड़ा धोका और फ़रेब है कि वह मुस्तक़बिल में बड़े काम की उम्मीद बंधा कर उस छोटे नेकी के काम से रोक देता है जो उस वक़्त मुमकिन होता है। वह चाहता है कि बन्दा इस वक़्त जो नेकी कर सकता है किसी बहाने से उसको उससे हटा दे। और इस दांव में वह अकसर कामयाब हो जाता है। फिर मुस्तक़बिल में आदमी

जिस बड़े काम की उम्मीद बांधता है अकसर उसका वक़्त ही नहीं आता। बड़े कामों की उम्मीदें अकसर बेकार ही होती हैं। और इसके ख़िलाफ जो नेकी उस वक़्त मुमकिन हो, अगर्चे वह छोटी से छोटी ही हो, उसमें लगना अकसर बड़े काम तक पहुंचने की वजह और ज़रीआ बन जाता है। इस लिये अक़लमन्दी यह है कि जो नेकी जिस वक़्त जितनी मिल सके उसपर तो उसी वक़्त अमल कर लिया जाय और फुरसत से जल्दी फ़ायदा उठा लिया जाय—उन साहब को चाहिये कि वह फिर पर न रखें। इस वक़्त जितना मुमकिन हो वक़्त दे दें। और मेरी बीमारी का बिल्कुल ख़्याल न करें। किसी को क्या ख़बर इस बीमारी में सेहत के दिनों से कहीं ज़्यादा काम हो रहा है। यहाँ आने का यही ख़ास वक़्त है।"

अल्लाह का करना ऐसा ही हुआ कि वह बुर्जुग उस वक़्त क़याम न फ़रमा सके और मुस्तक़बिल के मुतअल्लिक़ उन्होंने जो इरादा किया था वह भी पूरा न हुआ, और कुछ ही रोज़ बाद हज़रत मौलाना का इन्तिक़ाल हो गया।

❖❖❖❖❖

किसी तहरीक और जमाअत के अग़राज व मक़ासिद और उसकी हक़ीकी रुह को समझने के लिए सब से अहम ज़रिया खुद जमाअत के बानी की सोहबत और उसकी रिफ़ाक़त है और उसके चले जाने के बाद सबसे क़रीबी और मुस्तनद ज़रिया उसकी किताबें, खुतूत और मलफ़ूज़ात हैं बल्कि खुतूत को कुछ हेसियतों से बाकी दोनों पर फ़ौक़ियत हासिल है।

आपके हाथों में जो किताब है यह मौलवी मुहम्मद इलयास (रह०) के खुतूत का मज्मूआ है जिसे मौलवी सय्यद अबुल हसन अली नदवी (रह०) ने मुरत्तिब किया है।

इस मजमूए में कुल 65 खुतूत हैं जिनमें शुरु के 34 खुतूत खुद मौलवी अबुल हसन अली नदवी (रह०) के नाम हैं, उसके बाद 5 खुतूत मियांजी मुहम्मद ईसा फ़ीरोज़पुरी मेवाती के नाम हैं, फिर 20 खुतूत दूसरे कारकुनान और दोस्तों के नाम और आख़िर में 4 खुतूत मेवात के तब्लीग़ी कारकुनान के नाम हैं।

यह खुतूत बेहद मक़बूल, माज़ी की यादगार और क़ीमती सरमाया हैं।

हज़रत मौलवी मुहम्मद इलयास (1303-1363 हिजरी) ने मुसलमानों में दीनी ज़िन्दगी और ईमानी रुह पैदा करने की जो कोशिश एक ख़ास तरीक़े पर शुरु की थी और जिसमें आपने आख़िरकार अपनी जान खपा दी, हज़रत का असली कारनामा वही दीनी दावत है। आज भी यह सिलसिला बहुत तरक़्क़ी और तेज़ी के साथ जारी है, अलबत्ता दावत के उसूल और उसकी रुह की हिफ़ाज़त की तरफ़ इस तहरीक से ख़ास तअल्लुक़ रखने वालों को ज़्यादा से ज़्यादा ध्यान करने की ज़रुरत है और इस सिलसिले में बहुत कुछ रहनुमाई इस मलफ़ूज़ात के मजमूए से भी हम हासिल कर सकते हैं।

इस किताब में मौलवी मुहम्मद मंज़ूर नोमानी (रह०) ने दो सौ से ज़्यादा मलफ़ूज़ात क़लम बन्द किए हैं, जो हज़रत मौलवी मुहम्मद इलयास (रह०) ने मुख़्तलिफ़ मजालिस और तब्लीग़ी सफ़र वग़ैरह में बयान फ़रमाए थे। इस मलफ़ूजात में मौसूफ़ ने तब्लीग़ के उसूल व तरीक़ा-ए-कार के ख़ास पहलुओं पर रौशनी डाली है। ऐसा महसूस होता है कि गोया आज भी हज़रत सामने बैठे हुए फ़रमा रहे हैं।